हरिदास संस्कृत सीरीज ३४०

काकचण्डीश्वरकल्पतन्त्रम्

-हिन्दीव्याख्योपेतम्

...ादक एवं व्याख्याकार

...हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

हरिदास संस्कृत सीरीज
३४०
***

काकचण्डीश्वरकल्पतन्त्रम्

'हरि'-हिन्दीव्याख्योपेतम्

सम्पादक एवं व्याख्याकार
पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

Publisher : Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi,
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.

ISBN : 81-7080-130-3

© Chowkhamba Sanskrit Series Office

K.37/99, Gopal Mandir Lane,
Near Golghar (Maidagin) P. Box. No. 1008,
Varanasi-221001, (India)
Phone : Office : 2333458, **Res. :** 2334032 & 2335020
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

Also can be had from :

Chowkhamba Krishnadas Academy

P.Box. No. 1118, K.37/118, Gopal Mandir Lane,
Near Golghar (Maidagin)
Varanasi-221001 (India)
Phone : 2335020

अनेक ग्रन्थों के लेखक, सम्पादक एवं व्याख्याकार

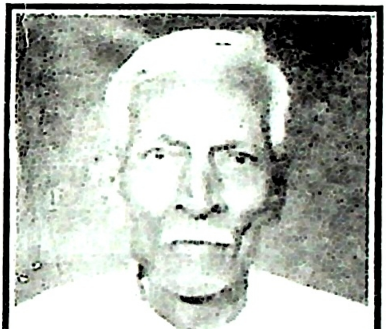

पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

प्राक्कथन

पूर्वकाल से ही भारतवर्ष उत्कृष्ट वनौषधियों का उद्गम-स्थल रहा है। वर्तमान काल में भी उत्तमोत्तम औषधियाँ यहाँ के अतिरिक्त अन्य किसी भी क्षेत्र में नहीं पायी जाती हैं। परन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि हम विदेशी औषधियों के प्रभाव में पड़कर अपने देश की गुणकारी औषधियों का विस्मरण करते जा रहे हैं।

हमारे देश में इस समय भी अमृतोपम औषधियों का विपुल भण्डार भरा पड़ा है। आज भी गिरिराज हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर तत्क्षण गुणकारी असंख्य जड़ी-बूटियाँ उपलब्ध होती हैं। त्रेता युग में इसी हिमालय श्रृंग से ही हनुमानजी ने संजीवनी बूटी लाकर श्रीरामानुज लक्ष्मण को पुनर्जीवन प्रदान कराया था। हमारे देश से ये अनुपम जड़ी-बूटियाँ विदेशों को निर्यात की जाती हैं तथा उसके बदले में वैज्ञानिक रीति से निर्मित की गयी औषधियाँ यहाँ भेजी जाती हैं।

आज की अपेक्षा पूर्वकाल में भारतवर्ष का वनस्पति-विज्ञान अत्यन्त उन्नत था। समस्त प्रकार की औषधियों में जड़ी-बूटियों का अपना एक विशिष्ट स्थान हुआ करता था। ताजी वनस्पतियों में जो सद्यः फलदायक गुण विद्यमान होते हैं वे अन्य किसी औषधियों में नहीं पाये जाते। आयुर्वेद के आचार्य महर्षि चरक एवं सुश्रुत ने भी इनकी सराहना की है।

ज्योतिष-ग्रन्थों के साथ आयुर्वेद का भी अटूट सम्बन्ध देखने में आता है, क्योंकि वनस्पतियों के प्रयोग, उनके ग्रहण-काल आदि के सम्बन्ध में तिथि, वार, नक्षत्र आदि का उल्लेख पाया जाता है। अतः इन सब नियमों का अनुपालन भी प्रयोक्ता के लिए आवश्यक होता है। कथित विधियों को अपनाने पर ही पूर्ण रूप से फल की प्राप्ति की जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक में विविध रोगों के शमनार्थ अनेक उपयुक्त वनस्पतियों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही पाठकों की सुगमता हेतु कोष्ठक में रोगों के लक्षण भी दिये गये हैं जिसके फलस्वरूप पुस्तक अत्यन्त उपयोगी हो गयी है। वनस्पतियों की सही पहचान हेतु जनकल्याण की भावना से भिषग्वर्ग के आगे आने पर ही उसका पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

अन्त में, विविध भाँति के ग्रन्थ-प्रकाशन में अतीव अभिरुचि रखने वाले चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी के प्रमुख संचालक श्रीब्रजमोहनदासजी गुप्त धन्यवाद के पात्र हैं जिनके द्वारा आयुर्वेद जगत सदैव से उपकृत रहा है।

हरिहरप्रसाद त्रिपाठी
सी.के. ५८/३५, रेशमकटरा,
वाराणसी

मार्गशीर्ष पूर्णिमा
विक्रम संवत् २०६०

विषयानुक्रमणी

क्र०	विषय	पृष्ठांक	क्र०	विषय	पृष्ठांक
	मङ्गलाचरणम्		२६.	अथ भृङ्गराजकल्पः	७८
.	ग्रन्थ का परिचयात्मक स्वरूप	०-१	२७.	अथ त्रिफलाकल्पः	७९
.	अथ अपराजिताकल्पः	२-३	२८.	अथ उदककल्पः	८०
.	अथ उच्चटाकल्पः	४-७	२९.	अथ मुसलीकल्पः	८१-८४
.	अथ नागदमनीकल्पः	८-१२	३०.	अथ मुण्डीकल्पः	८५-८६
.	अथ वज्रवल्लीकल्पः	१३-१४	३१.	अथ चित्रककल्पः	८७-८९
.	अथ वज्रदन्तीकल्पः	१५-१६	३२.	अथ मण्डूककल्पः	९०
.	अथ हस्तिकर्णीकल्पः	१७-२०	३३.	अथ श्रीफलकल्पः	९१-९२
.	अथ महानीलीकल्पः	२१-२४	३४.	अथ लाङ्गलीकल्पः	९३-९४
.	अथ शैलोदककल्पः	२५-३६	३५.	अथ आमलकीकल्पः	९५-९६
०.	अथ श्वेतपुनर्नवाकल्पः	३७-३८	३६.	अथ श्वेतगुञ्जाकल्पः	९७-९८
१.	अथ रक्तपलाशकल्पः	३९-४०	३७.	अथ मण्डूकब्राह्मीकल्पः	९९-१००
२.	अथ ब्रह्मकल्पः	४१-४२	३८.	अथ वन्दाकल्पः	१०१-१०२
३.	अथ श्वेतपलाशकल्पः	४३-४४	३९.	अथ बाकुचीकल्पः	१०३-१०४
४.	अथ कृष्णहरिद्राकल्पः	४५-४६	४०.	अथ रुदन्तीकल्पः	१०५-१०८
५.	अथ कटुरोहिणीकल्पः	४७-४८	४१.	अथ कटुतुम्बीकल्पः	१०९-११०
६.	अथ अश्वगन्धाकल्पः	४९-५०	४२.	अथ इलियालेपकल्पः	१११
७.	अथ अङ्कोलकल्पः	५१-५२	४३.	अथ निम्बकल्पः	११२-११३
८.	अथ लक्ष्मणाकल्पः	५३-५५	४४.	अथ तृणज्योतिकल्पः	११४-११५
९.	अथ ईश्वरीकल्पः	५६-५७	४५.	अथ श्वेताकल्पः	११६
०.	अथ शाल्मलीकल्पः	५८-६१	४६.	अथ भूकदम्बकल्पः	११७
१.	अथ काकजङ्घाकल्पः	६२-६५	४७.	अथ गन्धककल्पः	११८-१२१
२.	अथ क्षिप्राकल्पः	६६-६७	४८.	अथ देवदालीकल्पः	१२२-१२५
३.	अथ करञ्जकल्पः	६८-६९	४९.	अथ एरण्डकल्पः	१२६-१२८
४.	अथ निर्गुण्डीकल्पः	७०-७५	५०.	अथ मयूरशिखाकल्पः	१२९-१३३
५.	अथ इन्द्रवारुणीकल्पः	७६-७७	५१.	अथ ब्रह्मदण्डीकल्पः	१३४-१३५
			५२.	अथ सहदेवीकल्पः	१३६

मङ्गलाचरणम्

स जयति सिन्धुरवदनो देवो

यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।

वासरमणिरिव तमसां राशिं

नाशयति विघ्नानाम् ।।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

ग्रन्थ का परिचयात्मक स्वरूप

एवं ते बहवः कल्पाः सम्प्रति प्रतिपादिताः ।
यैश्च लोके मनुष्याणां दीर्घमायुर्बलं भवेत् ।।१।।
काकचण्डीश्वराख्योऽसौ ग्रन्थस्ते पुरतः प्रिये ।
बहुकल्पसमायुक्तः संग्रहेणोदितो मया ।।२।।

देवादिदेव महादेव ने देवी पार्वती से कहा— हे देवि! जगत् में मानवमात्र के लिए आयुष्यकारक इस प्रकार के अनेक कल्पों का वर्णन मैं तुमसे पहले कर चुका हूँ । हे प्रिये ! अब यह काकचण्डीश्वर नामक ग्रन्थ तुम्हारे सामने प्रस्तुत है । इसका वर्णन मैंने संक्षिप्त रूप से ही किया है ॥१-२॥

प्राग्ब्रह्मणा कृतं तन्त्रं महदस्ति मम प्रिये ।
महद्भिर्योगिभिः सिद्धैरपि तन्नाधिगम्यते ।।३।।
अतः समालोच्य मया बालानां हितकाम्यया ।
तन्त्रमेतन्नवं प्रोक्तं येन यान्ति सुखं जनाः ।।४।।

हे देवि ! पुराकाल में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा प्रतिपादित मेरा एक ऐसा विशाल तंत्र-विषयक ग्रन्थ है जो बड़े-बड़े योगियों, यतियों तथा सिद्धों की बुद्धि से परे हैं । अतः उसका भली-भाँति चिन्तन कर शिशुओं के हितार्थ मैंने इस नूतन तंत्र का कथन किया है ताकि सभी मनुष्यों के लिए यह ग्राह्य बन सके ॥३-४॥

प्रीत्यै तव च लोकस्य त्वन्नाम्ना ख्यातिमृच्छतु ।
मन्नाम्नापि च सर्वत्र तन्त्रमेतत्सुरेश्वरि ।।५।।
इदं प्रिये ! लोकहितार्थमीरितं श्रीकाकचण्डीश्वरकल्पतन्त्रम् ।
भक्त्या पठेद्यः स न याति दुःखं बलं च मेधां महदायुरानुष्यात् ।।६।।

हे जगदीश्वरि ! तुम्हारी तथा जगत की संतुष्टि के निमित्त यह तंत्र मेरे और तुम्हारे नाम से इस सृष्टि में विख्यात हो ।

हे देवि ! इस काकचण्डीश्वर नामक कल्पतंत्र का मैंने जगत के हितार्थ ही कथन किया है । श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति इसका पठन-पाठन करता है वह सांसारिक क्लेशों में नहीं पड़ता तथा उसकी बुद्धि, आयु तथा शक्ति का विकास होता रहता है ॥५-६॥

।।श्री।।

काकचण्डीश्वर प्रणीत

काकचण्डीश्वरकल्पतन्त्रम्

हिन्दी व्याख्यासमन्वितम्

अथ अपराजिताकल्पः

ओषधी कथिता पूर्वं ब्रह्मणा तु महात्मना ।
अपराजिता च लोकेऽस्मिन् विख्याता गिरिकर्णिका ।।१।।
पुष्ये समुद्धृता सम्यग् हस्ते चोद्धृत्य वा पुनः ।
सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रासे मूलमुत्पाट्य यत्नतः ।।२।।

पूर्वकाल में सृष्टि-रचयिता ब्रह्माजी ने जिस अपराजिता नामक औषधि का कथन किया था, वही औषधि आधुनिक युग में गिरिकर्णिका के नाम से जानी जाती है । उक्त औषधि का उत्पाटन पुष्य या हस्त नक्षत्र में अथवा सूर्य-चन्द्र के ग्रहण में करना चाहिए ।।१-२।।

पुष्पकाले च पुष्पाणि मूलान्यादाय बुद्धिमान् ।
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योः महादेवस्य सन्निधौ ।।३।।
शुक्लवासाः शुचिर्भूत्वा कषायपरिवर्जितः ।
ततो वटिं च कृत्वा तां छायाशुष्कां च कारयेत् ।।४।।

पुष्पों के पुष्पित या पल्लवित होने के समय में ही प्रज्ञावान पुरुष को पुष्पों का चयन करना उचित कहा गया है । इसके अतिरिक्त समय में केवल मूल (जड़) का ही उत्खनन करना चाहिए । इसके पश्चात् कृष्णपक्षीय अष्टमी या चतुर्दशी तिथि में भगवान शिव के सन्निकट पवित्रावस्था में कषायरहित धौत वस्त्र शरीर पर धारण करें । तदनंतर ग्रहण की गयी औषधि को जल की सहायता से पीसकर वटी (गोली) को छायादार स्थान में सुखा डालें ।।३-४।।

ललाटे तिलकं कृत्वा यं यं पश्यति मानवः ।
दृष्टमात्रेण दुष्टोऽपि कुर्यादाज्ञां स्वदासवत् ।।५।।
सङ्ग्रामे शत्रुसङ्घातेऽकाण्डेऽवार्येप्यनुत्तमे ।
मोहयेत् परसैन्यानि मुखसंस्थे महौषधे ।।६।।

जो व्यक्ति इस वटी को जल में घिसकर अपने मस्तक पर तिलकांकन करता है उसे देखते ही दुर्जन मनुष्य भी उसके सेवक बन जाते हैं ।

रणस्थल में, अनुपयुक्त समय में, दुर्दम्य शत्रुसेना के उपस्थित होने पर इस औषध को केवल मुख में रख लेने से ही शत्रु के सैनिक विमुग्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं ॥५-६॥

अङ्गस्योद्वर्तनं कृत्वा स्वयोन्यां वापि लेपयेत् ।
भूयांसस्तेन जीवन्ति यावज्जीवं न संशयः ॥७॥

इस महान औषधि को पीसकर शरीर पर उबटन की भाँति लेपन करने अथवा किसी नारी द्वारा अपने भगद्वार (योनि) पर लगाने से प्राणी नि:सन्देह रूप से चिरायु हो जाता है। इसे उपयोग करने से पूर्व निम्नलिखित मंत्र के द्वारा सात बार अभिमंत्रित कर लेना आवश्यक होता है ॥७॥

प्रयोग-मन्त्र

ॐ अमृते अमृतप्रभे सर्वसिद्धेश्वरि अमितप्रभे स्वाहा– इति मन्त्रेण सप्तधाभिमन्त्रितं कृत्वा यथोक्तमुपयोजयेत् ।

इति अपराजिताकल्पः सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार अपराजिताकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ उच्चटाकल्पः

रसायनं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
उच्चटेत्योषधी काचिज्जायते पृथिवीतले ।।१।।
वर्तुलं पर्णमस्याश्च रूपमेवं प्रदृश्यते ।
एकनाला भवेत् सा तु वर्णेनाकृष्णनीलिका ।।२।।

शिवजी देवी पार्वती से बोले— हे देवि! अब मैं तुमसे देवताओं के लिए भी दुष्प्राप्य रसायन (किसी एक धातु को दूसरे धातु में परिवर्तित करने वाली विद्या) का वर्णन कर रहा हूँ । इस भूतल पर उच्चटा नाम की एक औषधि उत्पन्न होती है जिसकी पहचान निम्न प्रकार से है—

इसके पत्ते वर्तुलाकार (गोल) होते हैं । यह एक नाल वाला तथा वर्ण में किंचित् कृष्ण अथवा नीलाभ होता है ॥१-२॥

तस्याः पुष्पं भवेद् भुग्नं शुकतुण्डसमप्रभम् ।
कन्दं कूर्मप्रतीकाशं तस्या लक्षणमीदृशम् ।।३।।

उक्त औषधि के पुष्प सिरे पर नीचे की ओर झुके हुए अर्थात् तोता पक्षी की चोंच के समान रक्तवर्णीय आकार का होता है । इसके कंद कछुए के आकार के सदृश होते हैं । इन्हीं लक्षणों के आधार पर इसकी पहचान की जाती है ॥३॥

उपर्यारुह्य तस्या अप्यन्तरिक्षं निरीक्षयेत् ।
देवयक्षगणाः सर्वे दृश्यन्ते नात्र संशयः ।।४।।
रसश्च द्रवते देवि मधुरश्च विशेषतः ।
सादृश्यं सर्वलोहानां सकृल्लेपेन याति सः ।।५।।

उसके ऊपर अवस्थित होकर अन्तरिक्ष (स्वर्गलोक) की यात्रा के समान समस्त देवों तथा यक्षों (देवयोनि के एक देवता जो धनाधिप कुबेर के कोषागार का रक्षण किया करते हैं) का अवलोकन करना भी सम्भव हो जाता है ।

शिवजी ने कहा— हे देवि! इस औषधि से विशेषतया मधुर रस का स्राव हुआ करता है । एक बार उसको लेपित करने से ही यह सम्पूर्ण रूप से लौह के सदृश बन जाता है ॥४-५॥

काञ्चनं कुरुते दिव्यं क्षिप्रं चैव च वह्निना ।
मज्जयित्वाङ्गुलिं तत्र लिहेत् तं तु सकृत् पुमान् ।।६।।

विमानानि च सर्वाणि तत्र पत्रस्थिता नराः ।
पश्यन्ति नात्र सन्देह ओषध्यास्तु प्रभावतः ।।७।।

यह अग्नि के सम्पर्क में आते ही दिव्य स्वर्ण के रूप में बदल जाता है । उसके रस में अपनी अंगुली डुबोकर एक बार उसका प्राशन (भक्षण) करना चाहिए । औषधि के फलस्वरूप उसके पत्ते पर आसीन होकर मानव निःसन्देह रूप से सभी विमानों का अवलोकन करने में समर्थ हो जाता है ।।६-७।।

प्रद्युम्नसदृशं रूपं नागायुतपराक्रमः ।
कान्त्या चन्द्रसमः प्राज्ञो वेगेन पवनोपमः ।।८।।
मेधावी सर्वशास्त्रज्ञो बलीपलितवर्जितः ।
मार्कण्ड इव दीर्घायुः सत्यं सौभाग्यवान् भवेत् ।।९।।

इस औषधि की प्रभावशालिता के कारण विवेकशील प्राणी प्रद्युम्न (कामदेव के अवतार श्रीकृष्ण के पुत्र) के तुल्य स्वरूपवान,दश हजार हाथियों के समान बलवान, चंद्रमा के समान कांतिमान तथा पवन के समान वेगवान बन जाता है ।

इसके अतिरिक्त वह मेधावी, शास्त्रज्ञ, वलीपलित (असमय में ही त्वचा पर झुर्री पड़ना तथा केशों की श्वेतता) रोगों से रहित, मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय ऋषि के समान चिरायु तथा सौभाग्यवान बनता है । यह बात नितान्त सत्य है ।।८-९।।

अथ वै पत्रपुष्पाणि फलमूलं तथैव च ।
सूक्ष्मचूर्णं प्रकुर्वीत प्रतिवारं च दापयेत् ।।१०।।
छेदे दाहे कर्षणे च हेमोभवति निश्चितम् ।
शूलपत्राणि लेपेन वेधयेन्नात्र संशयः ।।११।।

इसके पंचांग (पत्र, पुष्प, फल, मूल एवं छिलका) का बारीक चूर्ण बनाकर प्रत्येक बार छेदन करके पुनः चूर्ण बनायें । छेदन, दाहन तथा अवलेखन की क्रिया निष्पन्न करने से यह स्वर्ण रूप में परिणत हो जाता है। लौह-पत्र पर इसका लेपन करने से वेधकर्म सम्पन्न होता है ।।१०-११।।

काञ्चनं कुरुते दिव्यं त्रिभिर्दोषैर्विवर्जितम् ।
अथैतदोषधिस्थानं कथयामि समासतः ।।१२।।
कुबेरनगरे रम्ये शङ्खतीर्थे तथैव च ।
हिमालये गिरौ रम्ये तथा जालन्धरे गिरौ ।।१३।।

इसके पश्चात् त्रिदोषों से रहित यह दिव्य स्वर्ण बन जाता है । अब संक्षिप्त रूप से इस औषध के औत्पत्तिक स्थान का वर्णन किया जा रहा है ।

अलकापुरी (यक्षपति कुबेर की नगरी) में, शंखतीर्थ में, मनोरम हिमालय पर्वत तथा जालन्धर गिरि पर, ॥१२-१३॥

सव्यो विन्ध्ये महानागे नरनारायणाचले ।
चन्द्रकान्तगिरौ चापि हेमपुष्टे च सुस्थले ।।१४।।
एषु स्थानेषु विज्ञेया ह्योषधी सुरपूजिता ।
विजया नाम विख्याता त्रिषु लोकेषु सुन्दरी ।।१५।।

दक्षिणांचल में विन्ध्य पर्वतश्रेणी पर, नर-नारायण पर्वत पर, चन्द्रकान्त पर्वत पर तथा हेमपुष्ट तीर्थ की पवित्रस्थली पर यह औषध पाया जाता है । हे सुन्दरि ! देवताओं द्वारा वन्द्य यह औषध त्रैलोक्य में विजया नाम से ख्याति-प्राप्त है ॥१४-१५॥

आयुष्यं साधकेन्द्रस्य ददाति सुरपूजिता ।
कान्तजीर्णं रसं कृत्वा हेमजीर्णं तथा युतम् ।।१६।।
उच्चटाया रसं दत्त्वा रसकर्षं विमर्दयेत् ।
पिबेत् मधुघृतैर्युक्तं निद्रा भवति तत्क्षणात् ।।१७।।

देवताओं द्वारा पूजित इस औषध के द्वारा साधक आयुष्य प्राप्त करता है । कान्तलौह (विशेष प्रकार का लौह) को जीर्ण (जारण-क्रिया) करके उसके रस में उच्चटा बूटी मिलाकर हेमजीर्ण किया जाता है । अब इसी उच्चटा वनस्पति का रस मिश्रित कर एक कर्ष (१६ माशे की एक प्राचीन तौल) परिमाण में पारा (Mercury) का मर्दन करे । तदनन्तर घी और मधु (इनकी मात्रा कभी बराबर की नहीं होनी चाहिए । बराबर की मात्रा ग्रहण करने पर ये विषतुल्य हो जाते हैं । अतः इन्हें विषम परिमाण में लेने चाहिए) के साथ पान करने से शीघ्र ही नींद आ जाती है तथा अनिद्रा का नाश होता है ॥१६-१७॥

उपयुक्ते ततश्चूर्णे तद्योगाच्च जगत्यसौ ।
मासैकेनैव देवेशि संशयान् सर्वतस्त्यजेत् ।।१८।।
स्वयं निगृह्यते सिद्धिः सूर्यतेजस्समप्रभः ।
त्रासयेच्च जगत्सर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।।१९।।

ऐसा साधक उपर्युक्त चूर्ण का उसी के योग से निरन्तर एक महीने तक सेवन करके सांसारिक संशयों से विमुक्त हो जाता है ।

उस व्यक्ति के निकट सिद्धि स्वतः उपस्थित हो जाती है । ऐसा व्यक्ति सूर्य के समान कांतिवान तथा तेजस्वी बनकर यक्ष, सर्प तथा दानवों से संयुक्त समस्त भूमण्डल को त्रस्त कर डालता है ॥१८-१९॥

अमरानपि निर्जित्य बलेन कुलिशाधिपः ।
हत्वा विद्याधरान् सर्वान् ये चान्ये जयकाङ्क्षिणः ॥२०॥
स्वयमेव भवेदिन्द्रः कल्पस्यास्य प्रभावतः ।
अथवा सेटकं सूताच्चतुर्थांशं निधाय च ॥२१॥

शक्तिशालियों में वह वज्रपाणि इन्द्रदेव के समान समस्त देवों, विद्याधरों तथा सभी जयेच्छुओं को विजित कर उनका हनन कर डालता है। अधिक कहने से क्या लाभ? ऐसा मनुष्य इन्द्रदेव के तुल्य पराक्रमी हो जाता है ॥२०-२१॥

उच्चटाया रसं दत्त्वा मर्दयेत् पाणिमध्यतः ।
मर्दिते रवितापेन रसो दिव्यौषधीबलात् ॥२२॥
भिनत्ति सर्वलोहांश्च लक्षांशेन वरानने ।
अथवा तां क्षिपेद्वक्त्रे सोऽदृश्यो भवति क्षणात् ।
व्रजेच्च किन्नरं लोकं तत्रादौ जायते नृपः ॥२३॥

अथवा पारद (पारा) से चौथाई अंश में सेटक लेकर उसमें उच्चटा का रस मिला दें । तदनन्तर उसे दोनों हाथों के मध्यवर्ती भाग में रखकर मर्दन करे । इसके पश्चात् इस औषध का पुनः धूप में मर्दन करने पर यह रस अपने लक्षांश से हे वरानने! यह समस्त लौह का मर्दन कर डालता है । अथवा इसे मुख में धारण करने वाला प्राणी पल-भर में ही अदृश्य होकर किन्नर (एक प्रकार की योनि जिसमें समस्त शरीर मानव का तथा मुँह अश्वमुखी होना कहा गया है) लोक में गमन कर वहाँ राजा बनता है ॥२२-२३॥

इति उच्चटाकल्पः सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार उच्चटाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ नागदमनीकल्पः

नागस्य दमनी नाम्ना विख्याता भुवनत्रये ।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामि भद्रे गोत्रेशसुन्दरि ।।१।।
कृष्णनाला भवेत् सा तु पत्रं ताम्बूलसन्निभम् ।
पीतपुष्पा भवेदेवं लक्षणैर्लक्षयेन्नरः ।।२।।

शिवजी ने देवी पार्वती से कहा— हे प्रिये ! त्रैलोक्य में प्रसिद्ध नागदमनी नामक औषध का लक्षण मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ।

उस औषध का डंठल (नाल) कृष्णवर्णीय, पान के पत्ते के समान उसका पत्र तथा उसमें पीले रंग के फूल निकलते हैं । इन्हीं लक्षणों के आधार पर उसकी पहचान की जाती है ॥१-२॥

नागानां दमनी यस्मान्नागदमनीति विश्रुता ।
माङ्गल्यं च पवित्रं च श्रियं चापि धृतिं स्मृतिम् ।।३।।
विद्यां कीर्तिं च मेधां च त्रैलोक्ये च श्रुतिस्मृतीः ।
उपबृंहयति क्षिप्रं सहस्रायुर्भवेन्नरः ।।४।।

साँपों के प्रति दमनात्मक गुण होने के कारण ही इस पौधे को नागदमनी नाम से सम्बोधित किया जाता है । यह औषधि त्रिभुवन में मंगलकारिणी, पुनीत, श्री, धैर्य, स्मरण- शक्ति, विद्या, यश, बुद्धि तथा श्रुति-स्मृति (सुनी गयी बातों का स्मरण रखना) का अतिशीघ्र बृंहण (बंधन) करती है । इसके प्रभाव से मनुष्य सहस्रवर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करता है ।

दारिद्र्यं नाशयेदाशु सौभाग्यं कुरुते सदा ।
शान्तिदा पुष्टिदा चैव सर्वकर्मकरी शुभा ।।५।।
रणे राजकुले द्यूते व्यवहारे पराजिते ।
ओषधिं श्रवणे कण्ठे हस्ते शिरसि धारयेत् ।।६।।

यह निर्धनता की सद्यः विनाशिनी, सौभाग्यदायिनी, शांतिप्रदायिनी, पुष्टिवर्धिनी, सभी कर्मों का प्रतिपादन करने वाली तथा शुभ फलदायिनी है ।

इस औषध को रणस्थल, राजदरबार, द्यूत-क्रीड़ा, व्यवहार-काल तथा पराजय की स्थिति में कान, गला, भुजा तथा मस्तक पर धारण करना चाहिए ॥५-६॥

बाहुभ्यां मुद्रिके वापि कट्यां वा धारयेच्छुभाम् ।
वशीकरोति सर्वांश्च रतिपुष्टिविवर्धनी ।।७।।

मृत्यूनां विद्धि शमनी यत्र तिष्ठति सा गृहे ।
नाग्निप्रवेशं तस्यैव जलधौ च महाहवे ।।८।।

इसके अतिरिक्त इसे दोनों भुजाओं में, अँगूठी में, श्रवणेंद्रिय में रण करने के परिणामस्वरूप रति-क्रीड़ा में वर्धन तथा सभी का वशीकरण ता है ।

जिसके गृह में इस औषधि की विद्यमानता रहती है वहाँ पर मृत्यु भी शमन होता है । अग्नि में प्रविष्ट होने, सागर में डूबने, भीषण संग्राम ।।७-८।।

व्याघ्रराक्षससिंहेषु विवादे शत्रुसङ्कटे ।
न भयं विद्यते तस्य यस्य कण्ठे सदीश्वरी ।।९।।
शङ्खचक्रासिवर्ध्रेण नागपाशविमोक्षणे ।
शूलधारास्तवापीयं मोक्षयेदीश्वरी धृता ।।१०।।

व्याघ्र, राक्षस, सिंह आदि हिंसक पशुओं के अभिमुख होने पर, द-विवाद में, वैरियों द्वारा संकट उपस्थित होने की परिस्थिति में यह रीय औषधि जिसके कंठ-प्रदेश में अवस्थित रहती है उसे किसी प्रकार का नहीं रहता ।

शंख, चक्र, खड्ग, वर्ध्र (हाथी बाँधने के लिए विशेष प्रकार की नु-शृंखला) तथा नागपाश से मुक्त कराने हेतु, हे जगदीश्वरि! इस रस्वरूपा नागदमनी के धारण मात्र से ही प्राणी बंधन से रहित हो जाता ।।९-१०।।

ईश्वरी हरते क्षिप्रं विषं स्थावरजङ्गमम् ।
विषाण्युपविषाण्येवं दृष्ट्वा नश्यन्ति तत्क्षणात् ।।११।।
दोषं सा वार्श्चिकं सार्पं मोचयेद्विषमुत्तमम् ।
अपचीगण्डमालादिपिडिकादिव्रणेषु च ।।१२।।

हे देवि! इस ईश्वरस्वरूपिणी औषधि के प्रभाव से स्थावर विष (अचल , सिंगिया, शंखिया आदि) तथा जंगम विष (कीड़े-मकोड़ों के दंशन द्वारा न्न विष) शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । सभी प्रकार के विष-उपविष इसके नमात्र से ही नाश को प्राप्त हो जाते हैं । इस औषधि के द्वारा बिच्छू के डंक तथा सर्पदंशन के विष से भी मुक्ति मिलती है । इसके अतिरिक्त अपची चर्मरोग, अपरस), गण्डमाला (गले में होने वाले फोड़ों की शृंखला) तथा का आदि रोगों में होने वाले घावों,।।११-१२।।

रोहिण्यां चैव न भयं यस्य कण्ठे सदीश्वरी ।
एतान्यन्यानि ऋषयो ज्ञात्वाऽऽसन् निर्भया विषात् ।।१३।।
वातगुल्मोदरं हत्वा हृद्रोगं च विनाशयेत् ।
भक्षयेद्वर्षमेकं च घृतेन मधुना सह ।।१४।।

तथा रोहिणी आदि रोगों का शमन इसे कंठ-प्रदेश में धारण कर से होता है । इसी प्रकार की अन्य औषधियों का ज्ञान प्राप्त कर ऋषि-मु सदैव ही विष के प्रति निर्भय होकर जीवन-यापन किया करते थे ।

इस औषध का प्रयोग निरन्तर एक वर्ष तक घी तथा मधु के सा करते रहने पर वातगुल्म (पेट में होने वाला वायुगोला) तथा हृदय रोग भी छुटकारा पाया जा सकता है ॥१३-१४॥

सर्वरोगविनिर्मुक्तो वलीपलितवर्जितः ।
जीवेद्वर्षसहस्रं तु महातेजा महाबलः ।।१५।।
पञ्चवर्षप्रयोगेण लक्षायुर्जायते नरः ।
नवनागबलो भूत्वा मृत्युमात्मेच्छया जयेत् ।।१६।।

इसके द्वारा समस्त रोगों से विमुक्त, बलीपलित रोग (असमय में शरीर के चमड़ों पर झुर्री पड़ना तथा बालों का श्वेत होना) से रहित, अत्य तेजस्वी तथा महान शक्तिशाली होकर मनुष्य हजार वर्षों तक जीवित सकता है ।

इसका पाँच वर्षों तक सतत प्रयोग करते रहने वाला व्यक्ति लाख वर्ष की आयु पा लेता है । ऐसा मनुष्य हस्ति-शावक के सम बलवान होकर अपनी इच्छा से मृत्यु पर भी विजय पाने में सफल हो सव है ॥१५-१६॥

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सर्वकर्मविवर्जितः ।
मधुना सह संयुक्तं लिङ्गे लेपं तु कारयेत् ।।१७।।
अवश्यं सा भवेद्वश्या यावद्यौवनसंयुता ।
घृतेन सह संयुक्तं बन्ध्यात्वं नश्यति ध्रुवम् ।।१८।।

ऐसा साधक सभी कर्मों तथा रोगों से रहित हो जाता है । औषध को मधु (शहद) के साथ जननेंद्रिय पर लेपन कर ले तो वह म तरुणी नारी को भी अपने अधीन कर लेता है ।

जो नारी इसे घी से मिश्रित कर अपनी योनि पर लेप लगा लेती है वन्ध्यात्व दोष से रहित होकर सन्तान-प्रजनन में समर्थ हो जाती है ॥१७-१

नागश्चाभ्रकसूतौ च ग्राह्यं गृह्णन्ति तत्क्षणात् ।
मर्दितो विधिवत्सूतः सर्वलोहान् भिनत्ति च ।।१९।।
नागवङ्गौ समौ कृत्वा तत्समं सूतकं क्षिपेत् ।
शनैर्यावद् ग्रसेयुस्ते नागिन्याः स्वरसेन तु ।।२०।।

उपयुक्त मात्रा में नाग (सीसा नामक धातु) अभ्रक (एक खनिज र्थ) तथा पारद (पारा) को शीघ्र ही ग्रहण करने में सक्षम हो जाता है । ध-विधानपूर्वक नाग के मिश्रण से मर्दित पारा सभी प्रकार के लोहों का न कर सकता है ।

सर्वप्रथम नाग (सीसा) तथा वंग (राँगा) को समान भाग में लेकर दोनों के परिमाण के बराबर पारा मिला लें तो तत्काल ही उसका ग्रास जाता है । अब उस रस के मध्य काल में नागदमनी पौधे के स्वरस चोड़कर निकाला हुआ रस), ॥१९-२०॥

मर्दयेद्रसमध्ये तु तावद् भ्रमरसंनिभम् ।
ततस्तत्षोडशांशं तु दीप्यं काञ्चनवर्णकम् ।।२१।।
पुनर्नवारसेनैव लवणेन तु दापयेत् ।
अथ तत् सप्तरात्रेण चाभ्रकं ग्रासयेत् पुनः ।।२२।।

को डालकर तब तक मर्दन करते रहें जब तक वह भौंरे के समान वाला न हो जाय । तदनन्तर उसके सोलहवें भाग को जो चमकीले स्वर्ण वाला होता है, उसे पुनर्नवा (भूमि पर फैलने वाली एक लता, हपूरना) के रस तथा लवण से छेदन करें । इस प्रक्रिया के अनन्तर रात्रि में वह अभ्रक (अबरक) का ग्रहण करता है ॥२१-२२॥

शिरस्स्फोटिरसेनैवमपामार्गरसेन च ।
निर्गुण्ड्याः स्वरसो ग्राह्यः स्नुहीक्षीरं तथैव च ।।२३।।
तक्रेण लवणं चैव यथेष्टं मर्दयेत् पुनः ।
ईश्वरीरससंयुक्तमभ्रकं ग्रासयेत् पुनः ।।२४।।

अथवा शिरःस्फोटि तथा अपामार्ग (चिचिड़ा) के रस से भी छेदन ा जा सकता है । निर्गुण्डी (संभालू) तथा स्नुही (सेंहुड़ का पौधा जिसमें दूध जैसा स्राव निकलता हैं, थूहर) के दूध तथा मट्ठा के द्वारा लवण को भाँति मसल डालें । पुनः उसमें नागदमनी का रस मिलायें तो अभ्रक का होता है ॥२३-२४॥

ईश्वरीरहितं देवि न किञ्चित् कर्म सिध्यति ।
न हि कान्ताभ्रकादीनि न च नागरसावपि ।।२५।।

शिवजी बोले– हे देवि! मानव के कोई भी कर्म नागदमनी के अभ में सिद्ध नहीं होते । इसके (नागदमनी) के बिना कान्तलौह, अभ्रक, न तथा पारद भी अपनी गुणवत्ता से वंचित रह जाते हैं एवं साधक को सि भी उपलब्ध नहीं होती ॥२५॥

रसतत्त्वं प्रयान्त्यत्र न च सिद्ध्यन्ति साधकाः ।
पारदः षड्बलो ग्राह्यश्चाभ्रकात् षड्बलं तथा ॥२६॥
नागिन्याश्च रसो ग्राह्यो ह्यजामूत्रेण मर्दयेत् ।
क्काथयेद्वह्निना प्राज्ञः खल्वे पिंष्यादनन्तरम् ॥२७॥

षड्गुण जारित (छः बार जीर्ण किया हुआ) पारद का ग्रहण करके अ से षड्गुण नागदमनी बूटी के स्वरस को मिलाकर अजामूत्र (बकरे का मूत्र) के अच्छी प्रकार से घोटें । तत्पश्चात् उसे आग पर चढ़ाकर उसका क्वाथ (काढ़ा) लें । पुनः उसे पत्थर के खरल में खूब पीस डालें ॥२६-२७॥

एवं कुर्यादहोरात्राद् गुटिकां तस्य सुन्दरि ।
क्रमाद्भावनया ह्येतत् सर्वलोहांश्च वेधयेत् ॥२८॥
एवं सञ्चारितं कृत्वा सप्ताहाच्छ्रुतवेधिकः ।
सप्तसप्ताहकेनापि लक्षवेधी भवेन्नरः ॥२९॥

हे सुन्दरि! इस प्रकार दिन-रात घोंटकर उसकी वटी बना लें । प्रकार उसे भावित करने से उसके द्वारा समस्त लौहधातु का वेधन होता

इस प्रकार उसका संचरण करते रहने से वह एक सप्ताह में श्रुतवेधी जाता है तथा सात सप्ताह के अनन्तर व्यक्ति लक्षवेधी बन जाता है ॥२८-२

अष्टमेऽपि तु सप्ताहे स्पर्शवेधी भवेन्नरः ।
नवमे सप्तके प्राप्ते चोद्योतनकरो भवेत् ॥३०॥
दशमे सप्तके प्राप्ते स महारस उच्यते ।
महारसे तु सम्प्राप्ते को न मुञ्चति बन्धनात् ॥३१॥

इति नागदमनीकल्पः सम्पूर्णम् ।

आठ सप्ताह के पश्चात् मनुष्य स्पर्शवेधी तथा नवें सप्ताह उद्योतक हो जाता है । दसवें सप्ताह में वह महारस के नाम से जाना है । महारस के सेवन से समस्त प्राणी बंधनरहित हो जाते हैं ।

इस प्रकार नागदमनीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ वज्रवल्लीकल्पः

वज्रस्य सदृशैः पत्रैर्ज्ञेया वज्राह्वयौषधी ।
अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु पयसाऽस्याश्च भक्षयेत् ।।१।।
विरेकवमने कृत्वा कट्वम्लादीन् विवर्जयेत् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण हन्ति कुष्ठानशेषतः ।।२।।

इस वज्रवल्ली नामक औषधि के पत्ते वज्र के सदृश कठोर होते हैं, कारण इसे वज्रवल्ली कहा जाता है। अँगूठे के पोर के बराबर इसके को दूध के साथ खाना चाहिए।

वमन तथा विरेचन के पश्चात् कटु (कड़ुआ), अम्ल (खट्टा) आदि म वस्तुओं का त्याग कर इसे सात रात्रि तक सेवन करने से सभी प्रकार के (इसके अट्ठारह भेद कहे गये हैं) रोगों का विनाश हो जाता है॥१-२॥

द्वितीयसप्तरात्रं च तेनैव विधिना कृतम् ।
महोदरं च गुल्मं च मण्डूकाकृतिमौदरम् ।।३।।
गण्डमालादिमन्यांश्च हन्ति सर्वामयानपि ।
प्रणश्यन्ति यथा सूर्यकान्त्यान्धतमसां गणाः ।।४।।

दूसरे सप्ताह में भी पूर्व रीत्यानुसार इसका सात दिनों तक निरन्तर करने से महोदर (पेट का सामान्य रूप से अधिक बड़ा होना), गुल्म) तथा मेढ़क के समान सभी उदर रोगों, गण्डमाला तथा अन्यान्य के रोग वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश से अंधकार मिट है ॥३-४॥

तृतीयसप्तरात्रेण मेधावी प्रियदर्शनः ।
सर्पवत् कञ्चुकं दत्त्वा जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।।५।।
न चैव परिहारोऽस्ति भक्ष्यभोज्यान्नसङ्गमे ।
किमत्र चित्रं यदि वज्रवल्ली
सशर्करा गोघृतसंयुता च ।
मासेन रोगान् सकलान्निहन्ति
द्विमासतो यच्छति यौवनश्रियम् ।।६।।

इति वज्रवल्लीकल्पः सम्पूर्णम् ।

पूर्व की भाँति ही तीसरे सप्ताह में इसके सेवन से मनुष्य मेधावी, र्शी तथा सर्प के सदृश केंचुल छोड़ता हुआ (जिस प्रकार पुरातन साँप

अपने शरीर के बाह्य खाल को छोड़ दिया करता है) तीन सौ वर्षों त जीवन धारण करता है ।

इसमें भक्ष्य, भोज्य तथा अन्न ग्रहण में कोई दोष नहीं है ।

यदि इस वज्रवल्ली औषध का सेवन लगातार एक महीने तक गो तथा शर्करा के साथ किया जाय तो समस्त प्रकार के रोगों का निवारण सं हो जाता है तथा दो मास तक सेवन करने वाला व्यक्ति यौवनावस्था प्राप्त हो जाता है । इसमें आश्चर्य के लिए कोई स्थान नहीं है ।।५-६।।

इस प्रकार वज्रवल्लीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हि व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ वज्रदन्तीकल्पः

दृष्टा सञ्जीविनी काचित् सतां भाग्यततिः क्षितौ ।
आषाढकाले प्रथमे पुनर्जाता सपल्लवा ।।१।।
परीक्ष्य सम्यक् तच्चर्म वक्त्रेण धारयेत् ।
एकविंशादिनैस्तस्य दन्ता नैव पतन्ति च ।।२।।

इस भूतल पर जीवनदायिनी, सज्जनों की भाग्यविधायिनी जिस औषध को दृष्टिगत किया गया है वह आषाढ़ मास की प्रतिपदा तिथि में ल्लवित होता है ।

उक्त लक्षण के आधार पर उस औषधि की पहचान कर लेने के बाद सकी छाल (छिलका) मुख में धारण करनी चाहिए । इस प्रक्रिया को निरन्तर क्कीस दिनों तक पूर्ण कर लेने पर कभी दन्तपात नहीं होता ॥१-२॥

तन्मूलसाधितं क्षीरं पिबेद्वीर्यविवर्धनम् ।
अर्धांशेन जटाक्षीरे क्षरति त्वरया पिबेत् ।।३।।
एकविंशदिनैर्मर्त्यो सर्वरोगाद्विमुच्यते ।
अदृश्यो मण्डलेनैव कामरूपी त्रिमासतः ।।४।।

इस औषध की जड़ को दूध में पकाकर पान करने से वीर्यवर्धन ता है । इसके पश्चात् उस औषध की जटा से निःसृत होते हुए दूध को सके आधे परिमाण में शीघ्रतापूर्वक पान करने से वीर्य की वृद्धि होती है ।

निरन्तर इक्कीस दिनों तक इसके सेवन के परिणामस्वरूप मनुष्य म्पूर्ण रोगों से छुटकारा पाने में सफल हो जाता है । तीन मास तक सेवन पश्चात् वह अपनी इच्छा के अनुसार रूप-परिवर्तन कर अंतर्धान हो सकता ॥३-४॥

शत्रुबाणगणो नश्येत् षण्मासात्पण्डितेन सः ।
अषण्ढावयवो भूत्वा सेचनाद्वर्तते सदा ।।५।।
मृतसञ्जीविनी भूत्वा तद्रसान्तश्च पारदम् ।
वज्रं निक्षिप्य मूषायां ध्माते वज्रमृतिप्रदम् ।।६।।

इस औषध का प्रयोग छह महीने तक कर लेने पर वह शत्रु के बाण-मूहों को विफल कर सकता है । सेचन करने के फलस्वरूप पौरुष-शक्ति प्त कर दीर्घकाल तक जीवित रह सकता है ।

यह मृतकों को पुनर्जीवित करने वाली औषधि है । इसके रस में पारा लाकर वज्र (हीरक) डाल दें । तदनन्तर इसे मूषा (एक प्रकार का यंत्र

जिसके द्वारा भस्म तैयार किया जाता है) में भरकर आग पर चढ़ा दें तो वज्र का मारण होता है ॥५-६॥

वज्रदन्तीभवं वक्त्रे न्यसेद्यस्तु फलं पुमान् ।
वेगस्तम्भो भवेत्तेन विघातश्चैव वह्निना ॥७॥
तन्मूलान्तरिताकारः पश्यत्यम्बरचारिणः ।
तिलपुष्परसः प्रस्थो धामार्गवरसोत्तरः ॥८॥

वज्रदन्ती के फल को मुख में रखने से वेग का स्तम्भन होता है अर्थात् वेग की गति रुक जाती है ।

इसके मूल की आड़ में अपने शरीर का गोपन करने वाला व्यक्ति आकाशगामी जीवों (देवादि) को देखने में भी समर्थ हो जाता है । तिल के फूलों का रस एक प्रस्थ (एक प्राचीन तौल), धामार्गव का रस एक प्रस्थ,॥७-८॥

निशापुष्परसः प्रस्थस्त्रितयेन समन्वितम् ।
विपाचितं तु तैलं तदभ्यङ्गात् सप्तवासरैः ॥९॥
कमनीयं स्निग्धनीलं कुन्तलं जायते ध्रुवम् ।
अत्यन्तदीर्घमखिलनारीजनमनोहरम् ॥१०॥

इति वज्रदन्तीकल्पः सम्पूर्णम् ।

तथा निशापुष्प का रस एक प्रस्थ— इन तीनों के रस को एकत्रित कर तैल में पकावें । इस पक्व तैल का शरीर पर सात दिनों तक मालिश करने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से सुन्दर, चिकने नील के समान, अत्यधिक लम्बाई वाला हो जाता है तथा उसके केश कामिनियों के लिए मनमोहक हो जाते हैं ॥९-१०॥

इस प्रकार वज्रदन्तीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ हस्तिकर्णीकल्पः

शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यां पौर्णमास्यां समाहरेत् ।
रेवतीरोहिणीपुष्यश्रवणैश्च समन्विते ।।१।।

शुक्लपक्षीय पंचमी या पूर्णिमा तिथि में जब रेवती, रोहिणी, पुष्य श्रवण नक्षत्र विद्यमान रहे तो इस औषध का ग्रहण करना उचित है ॥१॥

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः सह मूलं विचूर्णयेत् ।
तोयं काञ्जिकतक्रैश्च दधिक्षीरयुतैः क्रमात् ।।२।।
पृथक् पृथक् सप्तवारं घृतेन सहितं पिबेत् ।
पञ्चाशद्दिवसैस्तेन वज्रकायो भवेन्नरः ।।३।।

औषधि ग्रहण करने से पूर्व गंध-पुष्पादि से पूजन करे । तत्पश्चात् सहित उस औषधि को पीस कर चूर्ण के रूप में बना लें । अब उसे शः घृत, जल, कांजी, तक्र (मट्ठा), दही तथा दूध के साथ अलग-लग अनुपान से सात बार सेवन करें । इस प्रक्रिया को पचास दिनों तक न्न कर लेने वाले मनुष्य का शरीर वज्र के समान कठोर तथा सुदृढ़ हो ता है ॥२-३।

तुरगोपमवेगः स्याज्जीवन्मुक्तोऽतिदीप्तिमान् ।
सहस्रमायुराप्नोति बलीपलितवर्जितः ।।४।।
यथेष्टं भोजनं कुर्वन् विचरेद् भुवि मानवः ।
एवमापाद्य वातघ्नं काञ्जिकेन समीरजित् ।।५।।

इस औषध के फलस्वरूप मनुष्य अश्व के सदृश वेगवान, जीवितावस्था भी जीवन्मुक्त, अत्यधिक देदीप्यमान, वलीपलित (त्वचा के ऊपर सिकुड़न केशों की श्वेतता) रोग से विमुक्त होकर सहस्र वर्षों की लम्बी आयु प्राप्त लेता है ।

इस वातघ्न (वायुनाशक) औषध का कांजी के साथ सेवन करने ा व्यक्ति इच्छानुरूप भोजन करता हुआ भी भूमण्डल में भ्रमण कर सकता अर्थात् ऐसे मनुष्य अपाच्य या गरिष्ठ वस्तु के भोजन कर लेने पर भी प्रकोप के शिकार नहीं होते ॥४-५॥

जलोदरं तु तक्रेण दध्ना गुल्मं समीरजम् ।
क्षीरेण कुष्ठरोगघ्नमाज्येन सकलामयान् ।।६।।
मधुना सर्वदोषांश्च नानारोगसमन्वितान् ।।७।।

इस औषध का सेवन मट्ठा के साथ करने पर जलोदर (उदर में जलाधिक्य), दही के द्वारा वातोस्थ गुल्म (वायुगोला), दूध से कुष्ठ, घी के साथ समस्त प्रकार के रोग तथा शहद के साथ सेवन करने से सभी विकारों का शमन होता है ॥६-७॥

अथ प्रयोगः—

ॐ चौरदृष्टिनिदृष्टे स्वाहा ।
मन्त्रेणानेन शुद्धात्मा सप्तवारं तु मन्त्रयेत् ।।८।।

प्रयोग-विधि— औषध-पान से पूर्व उपर्युक्त मंत्र से सात वार अभिमंत्रित कर लेना आवश्यक है ।

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतकुण्डिनि स्वाहा सर्वोषधीनां रक्षां कुरु कुरु स्वाहा। अयमधिवासनमन्त्रः ।।९।।

द्वितीय मन्त्रः— यह अधिवासन मंत्र है ।

अन्यो मन्त्रः

अमृतोद्भवायामृतं मे कुरु महौषधि सत्यं तेऽस्तु नमो नमः । अनेन मन्त्रेण सप्तवारं भक्षयेत् ।।१०।।

अन्यान्य मन्त्र— उक्त मंत्र बोलकर सात बार भक्षण करना चाहिए।

सोमवारे त्रयोदश्यां सहिते भानुरश्मिभिः ।
विशोष्य चूर्णयेन्नालाञ्जलकन्दसमुद्भवान् ।।११।।
सूक्ष्मचूर्णं प्रतिदिनमादाय त्रिफलारसैः ।
मिश्रितं पञ्चलोहेन पञ्चनिष्कसमन्वितम् ।।१२।।

किसी ऐसे दिन जब सूर्य की किरणें पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो रही हों तथा अबाध रूप से प्रकाश का आगमन हो रहा तो सोमवार के दिन त्रयोदशी तिथि के पड़ने पर जल में अवस्थित कन्द से उत्पन्न नाल का शुष्कीकरण कर महीन चूर्ण बना लें । अब पंच प्रकार के लौह मिश्रण को पाँच तोला (१२ माश=१तोला) परिमाण में बारीक चूर्ण को नित्यप्रति त्रिफल (हरड़, बहेड़ा तथा आँवला) के रस से सेवन करें ॥११-१२॥

सेवयेन्मासमात्रं तु यावत् संवत्सरं च तत् ।
ततो ब्रह्मायुषं जीवेद् गजवद्वीर्यवान् सुधीः ।।१३।।
विध्येश्वररसः प्रोक्तो लोकानां हितकाम्यया ।
भुक्त्वा समूलं सघृतं सक्षौद्रं पिप्पलीयुतम् ।।१४।।

एक महीने या एक वर्ष तक इस औषध का सेवन करने वाला प्राणी हाथी के समान बलवान तथा ब्रह्मा की आयु के समान आयुष्मान् बनकर जीवित रहता है ।

अब यहाँ जनकल्याण के निमित्त विन्ध्येश्वर रस का कथन किया जा रहा है । जड़ सहित इस औषध को घी, मधु तथा पिप्पली (छोटी पीपर) मिलाकर भक्षण करें ॥१३-१४॥

सङ्क्षिप्य तत्र संमर्द्य विधाय च मृदा ततः ।
निक्षिपेदायसे पात्रे पुटेदेतद्गजे पुटे ॥१५॥

उस औषध को खरल में डालकर अच्छी तरह मसलें और उस पर मिट्टी का लेप लगाकर उसे आच्छादित कर दें । तत्पश्चात् उसे लोहे के बरतन में भरकर गजपुट (एक प्रकार का यंत्र विशेष) में आग पर रखकर उसका भस्म तैयार कर लें ॥१५॥

अथ तत्प्रत्यहं जप्त्वा शतायुस्तन्निषेवणात् ।
हरीतकीतरुस्तद्वन्मार्कवं त्रिफलान्वितम् ॥१६॥
ब्राह्मीफलं महीधात्रीफलं चैव विमर्दयेत् ।
क्षीरेणालोड्य निष्पीड्य दशरात्रमतन्द्रितः ॥१७॥

तदनन्तर पूर्वकथित मंत्रों का जाप करके प्रतिदिन सेवन करने वाले व्यक्ति सौ वर्षों की पूर्णायु प्राप्त कर लेते हैं ।

इसी प्रकार अलग-अलग रूपों में हरड़ के वृक्ष, मदार के वृक्ष तथा त्रिफला के वृक्ष, ब्राह्मी बूटी के फल एवं महाधात्री (धव) फल का दश दिनों तक निरालस्य भाव से मंथन तथा निष्पीड़न करने के बाद उसका मर्दन करें॥१६-१७॥

प्रियं मुहूर्तमन्विष्य भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ।
एतत्सेवनमात्रेण गात्रं तु कनकायते ॥१८॥
अनेनैव प्रयोगेण भक्षयेद्बलवान् भवेद् ।
मन्वादियुगपर्यन्तं वर्तते लोकपूजितः ॥१९॥

तत्पश्चात् किसी शुभ मुहूर्त में प्रातःकाल उठकर इसका भक्षण कर लें । इसके सेवन से शरीर स्वर्ण के सदृश दीप्तिमान हो उठता है । इसी भाँति इसके प्रयोग करते रहने से मानव शक्तिशाली बनकर लोक में पूजित होता तथा मनु आदि ऋषियों के मन्वन्तर युग तक इस भूतल पर विद्यमान रहता है ॥१८-१९॥

आरग्वधं समूलं च तद्वदेव विनिर्दिशेत् ।

यही विधान मूल सहित आरग्वध (दंड के समान एक प्रकार का लंबा फल जिसके अन्दर से गूदा निकलता है, अमलतास) के लिए भी बतलाया गया है ।

इस प्रकार हस्तिकर्णीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

❋

अथ महानीलीकल्पः

कृष्णाभ्रकं महानीलां मधुना सह संयुताम् ।
आलोड्य धारयेन्मासं स्निग्धे भाण्डं प्रयत्नतः ।।१।।

कृष्णवर्णीय अभ्रक (अबरक Mica) तथा महानीली को एक साथ मधु के साथ मिलाकर किसी चिकने बरतन में एक महीने तक सावधानीपूर्वक रख छोड़ें ।।१।।

सुदिने भक्षयेत् पश्चाद्विडालपदमात्रकम् ।
कृष्णाभ्रकमहानीलीगुडुचीमुसलीमधु ।।२।।
समांशं मेलयेद्धीमान् भक्षयेत्सुदिने नरः ।
संवत्सरप्रयोगेण वृद्धोऽपि तरुणायते ।।३।।

उसे किसी मांगलिक मुहूर्त में एक कर्ष की मात्रा में भक्षण कर लें । विवेकवान पुरुष को शुभ घड़ी में कृष्णाभ्रक, महानीली, गूडूची (नीम के वृक्ष पर फैलने वाली एक लता जिसे गुरुच भी कहते हैं), मुसली (इसके दो भेद हैं, एक स्याह तथा दूसरी सफेद) एवं मधु को सम भाग में मिला कर भक्षण करना चाहिए । इसके एक वर्ष तक प्रयोग करते रहने से वृद्ध मनुष्य भी यौवनावस्था प्राप्त कर लेता है । ऐसा व्यक्ति बुद्धिमान तथा शक्तिमान बनकर तीन सौ वर्षों तक जीवन धारण करने में समर्थ होता है ।।२-३।।

मेधावी बलसंयुक्तो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।
कृष्णाभ्रकं महानीलीं कुमारीकाकजङ्घयोः ।।४।।
मूलानि बहुमूल्यानि समभागानि मेलयेत् ।
मधुना सर्पिषालोड्य सप्तरात्रं विधारयेत् ।।५।।

कृष्णाभ्रक, महानीली, घृतकुमारी (घीकुआर) तथा काकजंघा की अनमोल जड़ को समान परिमाण में ग्रहण कर मधु तथा घृत के साथ मथित कर सप्त रात्रि तक उसे धारण करें ।।४-५।।

देहशुद्ध्यै शुभे वारे भक्षयेत् क्षीरभोजनम् ।
वलीपलितनिर्मुक्तो वर्षयोगेन जायते ।।६।।
गोरोचनं महानीलीं प्रियङ्गुं शङ्खपुष्पिकाम् ।
गृहीत्वा श्रवणर्क्षे तु समश्नीताम्बुना सह ।।७।।

काय-शुद्धि के निमित्त इस योग का प्रयोग किसी शुभ दिवस से प्रारम्भ करें । दुग्धाहार ग्रहण करते हुए इसका भक्षण करना चाहिए । इसके वर्ष-भर तक प्रयोग करने के परिणामस्वरूप वलीपलित रोग से मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

गोरोचन, महानीली, प्रियंगु तथा शंखपुष्पी (एक प्रकार का छोटा क्षुप) को एक साथ मिलाकर श्रवण नक्षत्र (ज्योतिष- संबंधी एक नक्षत्र विशेष) आने पर जल के द्वारा सेवन करें ॥६-७॥

महानीलीं च गोरण्टां कपिलां घृतकज्जलीम् ।
निशायामञ्जयेन्नेत्रे मोहयेदतिवेगतः ॥८॥
निर्यासश्च महानील्या निर्गुण्डीनीरमाश्रितः ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च हन्ति सर्वान् न संशयः ॥९॥

महानीली, गोरण्टा, कपिला तथा घृत कज्जली को एक में मिलाकर रात्रि के समय आँखों में अंजन की भाँति लगाने से देखने वाले शीघ्र ही मुग्ध हो उठते हैं ।

महानीली से निर्गत गोंद निर्गुण्डी के स्वरस के साथ किये गये मिश्रण से निःसन्देह ही भूत-प्रेत तथा पिशाचादिकों का विनष्टीकरण होता है ॥८-९॥

एरण्डतैलसंमिश्रा वातशूलभयापहा ।
गुडेन शोफपाण्डुघ्ना धारोष्णेन तु कामलाम् ॥१०॥
गृहधूमेन संमर्द्या ह्येकाहविषमज्वरे ।
अन्येष्वपि च रोगेषु धारयेद्युक्तियोगतः ॥११॥

इस औषध का प्रयोग एरण्ड (अण्डी,रेंड) तैल में मिलाकर करने से यह वातजन्य शूल का नाश करता है । गुड़ के साथ लेने से सर्वांग शोफ (शरीर की सूजन) को दूर करता है तथा धारोष्ण दूध के साथ सेवन करने पर पाण्डुरोग (कामला, पीलिया) का शमन होता है ।

एक दिन के अन्तराल से आने वाले विषमज्वर में इसे गृहधूम के साथ मिलाकर मर्दन कर लें । तत्पश्चात् सेवन करें तो विषमज्वर दूर हो जाता है । इसी प्रकार विभिन्न अनुपानों के साथ इसे लेने से अन्यान्य प्रकार के रोगों का भी निवारण होता है ॥१०-११॥

गुरूपदेशमार्गेण तैस्तैः सह रसायनम् ।
सेव्यमानमिदं कुर्याद् वलीपलितवर्जितम् ॥१२॥
संवत्सरप्रयोगेण जीवत्यप्ययुतं समाः ।
पूर्वोक्तं नवनीताभ्रं दत्त्वा सारणसंपुटे ॥१३॥

गुरु के द्वारा कथित विधि के द्वारा भिन्न-भिन्न अनुपानों के साथ इस रसायन के प्रयोग से वलीपलित रोग से मुक्ति मिलती है । यदि एक साल

तक इसका प्रयोग लगातार किया जाय तो प्रयोगकर्ता दश हजार वर्षों तक भी जीवित रहने के योग्य बन जाता है । पूर्वोक्त वर्णित नवनीताभ्र को सारण सम्पुट में रखने पर, ॥१२-१३॥

यथातैलं क्षणादत्र द्रावयेद् द्रवमुत्तमम् ।
रसेन द्रवतानेनागस्त्यपुष्पभवेन च ॥१४॥
अम्लीकस्वरसैर्वापि पिष्ट्वा श्लक्ष्णं मुहुर्मुहुः ।
ताम्रपात्रे प्रकर्त्तव्यं प्रयोगैरेव मिश्रितम् ॥१५॥
सेव्यमानमिदं कुर्याज्जरामरणवर्जितम् ।

वह पलभर में ही तैल के समान द्रव का रूप ले लेता है । इस द्रवणशील रस का अगस्त पुष्प के रस अथवा अम्लीक स्वरस से इसे बारम्बार महीन पीस कर ताँबे के बरतन में मिला लें । इसके प्रयोग द्वारा जरा-मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है ॥१४-१५॥

पञ्चाङ्गचूर्णे नाकुल्या मिश्रं हेमरजोऽञ्चितम् ॥१६॥
तच्च सेव्यमजीर्णेऽपि ग्रहण्यां भेषजोत्तमम् ।
तद्वद्रोगेष्वतीसारादिषु कौष्ठेषु शान्तये ॥१७॥
मूसलीपत्रचूर्णेन रसम्यैतम्य सेवनम् ।

नाकुली के पंचांग (फल, फूल, मूल, पत्र एवं छाल) का बारीक चूर्ण (बुरादा) कर लें । तदनंतर उस चूर्ण में स्वर्ण के सूक्ष्म कण (बुरादा) या भस्म को मिलाकर इसका सेवन करें तो अजीर्ण (अपच) तथा ग्रहणी (बार-बार अपरिपक्व मल का निकलना, Sprue) रोग दूर होता है ।

इसके अतिरिक्त अतिसार (डायरिया) तथा विभिन्न प्रकार के आंत्रिक रोगों के शमनार्थ मुसलीपत्र के चूर्ण के साथ इस रस का सेवन करना चाहिए॥१६-१७॥

क्षीरेण गुल्मशोफाग्निमान्द्यान् संनाशेयत् क्षणात् ॥१८॥
भल्लातं वा गुडूचीं वा तिलेन पयसा सह ।
निषेवेत विनश्यन्ति कुष्ठं पामा विचर्चिका ॥१९॥

इस रस का प्रयोग दूध के साथ करने पर गुल्म, शारीरिक सूजन तथा अग्निमांद्य (भूख की कमी, Loss of appetite) रोग क्षणभर में ही नष्ट हो जाते हैं ।

भिलावाँ (भल्लातक) अथवा गुडूची (गुरुच) को तिल तथा दूध के साथ उपभोग करने पर यह कोढ़, खुजली तथा विचर्चिका (एक चर्मरोग

जिसमें शरीर पर छोटे-छोटे दाने निकलने और फैलते रहते हैं तथा उनमें से चिपचिपा स्राव होता है । इसे अंग्रेजी में सोरियेसिस कहते हैं ।) रोग का नाश करता है ॥१८-१९॥

घृतेन क्षयरोगघ्नं कृच्छ्रं शर्करया युतम् ।
करे बद्धं महानीलीमूलं नित्यज्वरापहम् ॥२०॥

इसका सेवन घृत के साथ करने पर क्षयरोग (टी०बी०) तथा शर्करा मिलाकर प्रयोग करने से मूत्रकृच्छ्र (एक मूत्ररोग जिसमें रोगी को रुक-रुककर थोड़ा पेशाब बारम्बार जलन के साथ होता रहता है, Micturition) का निवारण होता है । महानीली की जड़ को हाथ में बाँधने से प्रतिदिन आने वाला जवर छूट जाता है ॥२०॥

स्वरसेन महानील्याः सलिलं सर्वदोषहृत् ।
जपापल्लवपुष्पाणि महानीलीयुतानि च ॥२१॥
तण्डुलाम्भसि पीतानि घ्नन्ति दुष्टं हि शोणितम् ।
गोक्षुरेण महानीली पिष्टा तण्डुलवारिणा ॥२२॥
मूत्रकृच्छ्ररुजं हन्ति महतीं च महौषधी ।

इति महानीलीकल्पः सम्पूर्णम् ।

महानीली का स्वरस मिला हुआ जल समस्त विकारों को दूर करता है । जपापुष्प (अड़हुल) के पत्ते तथा फूल जो लाल रंग के होते हैं, महानीली के साथ मिला कर चावल के धोवन के अनुपान से पीने पर दुष्ट रक्त का नाश हो जाता है ।

गोखरू के साथ इस महानीली महौषध को चावल के धोवन की सहायता से पीसकर सेवन करने से मूत्रकृच्द्र (Micturition) नामक रोग का निवारण होता है ॥२१-२२॥

इस प्रकार महानीलीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ शैलोदककल्पः

अतः परं प्रवक्ष्यामि शैलोदकविधिं प्रिये ।
कर्दमायोमहीशैलैः शैलोदकचतुर्विधम् ।।१।।
कानिचित् क्षणवेधीनि दिनवेधीनि कानिचित् ।
पक्षमासादिषण्मासवेधकानि महीतले ।।२।।

देवी पार्वती से शिवजी ने कहा— हे प्रिये ! अब मैं तुमसे शैलोदक प की विधि का वर्णन कर रहा हूँ । इसके चार भेद बतलाये गये हैं जो शः इस प्रकार से हैं— १. कर्दम, २. अयः, ३. मही तथा ४. शैल ।

इस भू-मण्डल में कुछ शैलोदक क्षणवेधी, कुछ दिवसवेधी, कुछ वेधी, कुछ मासवेधी तथा कुछेक षड्मासवेधी अर्थात् छह महीने में ंगुण को प्राप्त होते हैं ॥१-२॥

क्षिप्तं यदा भवेत् काष्ठं शैलीभूतं च दृश्यते ।
बहिरन्तश्च तद्देवि वेधकं तत् प्रकीर्तितम् ।।३।।
हिङ्गुलं हरितालं च गन्धकश्च मनश्शिला ।
रसकरसाभ्यां विमलविषाणाभ्यां च मर्दयेत् ।।४।।

हे देवि ! जो प्रक्षेपण करने पर क्षणभर में ही काष्ठस्वरूप हो जाय तु बाह्य या आंतरिक रूप से देखने पर पर्वत के समान ही जान पड़े तो ही वेध कहा गया है ।

हिंगुल (शिंगरक), हरताल (एक पीतवर्णीय पदार्थ) गन्धक तथा शिल के रसक और रस से विमल तथा विषाण से मर्दिन करे तो वह एक सवेधी हो जाता है ॥३-४॥

अहोरात्रेण चैते हि कुर्वते वेधमुत्तमम् ।
गन्धकं तालकं चैव तोयपूर्णे घटे क्षिपेत् ।।५।।
यदा ते च घनाकारे तदा शैलोदकं भवेत् ।
अन्यथा चेष्टकं देवि तदा तत् स्यान्निरर्थकम् ।
वासरे मानवर्ते तु क्षणवेधि च तत्र तु ।।६।।

गन्धक तथा हरताल (Arsenic) को मिलाकर जलपूरित घड़े में डाल दें वह घनाकार रूप में परिवर्तित हो जाय तो वही शैलोदक कहलाता है ।

हे देवि! इसके लिए यदि कोई अन्य क्रिया अपनायी जाय तो वह हो जाती है । मानवर्त नामक पर्वत पर वह क्षणभर में ही वेधक बन है ॥५-६॥

श्रीशैले श्रीवनप्रान्ते पर्यङ्काख्ये शिलातले ।
तत्रस्थं क्षणवेधि श्रीनद्यां भगवतीतटे ।।७।।
एकाहवेधकं तत्र गोकर्णे च दिनत्रयम् ।
भद्रान्ते दिनवेधि स्याद्विलान्ते च त्रिवासरे ।।८।।

श्रीशैल पर्वत पर श्रीवन के आस-पास के भूभाग में पर्यंक ना शिलातल पर यह क्षणवेधी बन जाता है । श्रीनदी के तटवर्ती भाग में एक दिवसीय वेधकारक होता है । गोकर्ण नामक तीर्थस्थल में त्रिदिवसीय वेधक, भद्रान्त पर्वत में एक दिवसीय तथा विलान्त नामक स् में तीन दिवसीय वेधकारक बनता है ॥७-८॥

तारेश्वरे मासकं स्याद्वर्षादार्योदये तथा ।
ब्रह्मेश्वरे मासकं स्यात् व्याघ्रपादेऽष्टवासरे ।।९।।
अघोराख्ये मासकं तु सिंहद्वीपे तथा पुनः ।
दिनमेकं ब्रह्मगिरौ विन्ध्ये तु क्षणवेधकम् ।।१०।।

तारेश्वर तथा आर्योदय में मासवेधी तथा ब्रह्मेश्वर में भी एक म वेधी, व्याघ्रपाद में आठ दिवसीय, अघोर नामक स्थान तथा सिंहल (आधुनिक श्रीलंका) में एक मासवेधी होता है । ब्रह्मगिरि पर्वत पर एक में तथा विन्ध्य पर्वत क्षेत्र में क्षणमात्र में ही वेधी गुण से सम्पन्न हो ज है ॥९-१०॥

वासरान्माल्यकर्णे तु क्षणवेधि तिलोदके ।
किष्किन्धापर्वते रम्ये पंपातीरे क्षणाद्भवेत् ।।११।।
तस्य पश्चिमतो देवि योजनद्वितये पुनः ।
भूशैले त्रिदिनैरेवं त्रिदिनैर्वेदपर्वते ।।१२।।

माल्यकर्ण में एक दिन, तिलोदक में क्षणभर, सुरम्य किष्कि पर्वत के पम्पासर नामक सरोवर के तट पर यह क्षणमात्रवेधी हो जाता हे देवि ! उसके पश्चिम दिशा में दो योजन की दूरी पर स्थित भू पर्वत पर त्रिवसीय तथा वेद पर्वत पर तीन दिनों में वेधक गुणों से युक्त जाता है ॥११-१२॥

सिंहाचले पुरे देव्या दत्तात्रेयस्य सन्निधौ ।
शैलोदकं कोटिवेधि दुर्गदिशेऽपि वासरात् ।।१३।।
लक्षवेधि नृसिंहस्य नगरे च कलागिरौ ।
कलिन्दनद्याः पूर्वे तु योजनद्वितये पुनः ।।१४।।

तत्राङ्गिरसकुण्डे च क्षणवेधि शिलोदकम् ।

देवी के धाम सिंहाचल में दत्तात्रेय के निकट कोटिवेधी शैलोदक
ा है । परन्तु दुर्गदेश में एक ही दिन में वेधक बन जाता है ।

नृसिंहपुरी के कला नामक पर्वत पर शिलोदक लक्षवेधी होता है,
लिन्दी (यमुना) नदी के पूर्वीय भाग में दो योजन (८ कोस) की दूरी पर
स्थित आंगिरस कुण्ड में क्षणवेधी हो जाता है ॥१३-१४॥

वर्षाकाले भवेत्पीतं शीतकाले च लोहितम् ।।१५।।
उष्णाकाले भवेत्कृष्णं त्रैविध्यं तस्य विद्यते ।
अन्यत्र यत्र यत्रापि ब्रह्मविष्णुशिवोद्भवम् ।।१६।।
अमृतं तत्र तत्रापि वज्रीकरणमुत्तमम् ।

यह शिलोदक वर्षा ऋतु में पीतवर्णीय, शीत ऋतु में रक्तवर्णीय
ग्रीष्मऋतु में कृष्णवर्णीय हो जाता है । इस प्रकार वह त्रिविधरूपी होता
। इसके अतिरिक्त जो भी स्थान ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवोद्भूत हैं वहाँ
का अमृतस्वरूप श्रेष्ठ वज्रीकरण के तुल्य होता है ॥१५-१६॥

तस्योत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि यथा जानान्ति साधकाः ।।१७।।
महीं समुद्धृतवतो वाराहस्य कलेवरात् ।
यः स्वेदः पतितस्तस्माज्जातं शैलोदकं परम् ।।१८।।

अब इसके आगे उत्पत्तिस्थल का वर्णन कर रहा हूँ जिससे कोई भी
ाक अनभिज्ञ नहीं है ।

भगवान विष्णु द्वारा शूकर अवतार ग्रहण करने पर उनके अंगों से
पसीने की बूँदें भूमि पर गिरीं उसी के द्वारा शैलोदक की उत्पत्ति सम्भव
॥१७-१८॥

तन्मुखोत्थः क्षणाद्वेधी वासारात्क्रोडदेशजः ।
बाहुभ्यां क्षणवेधी स्यान्मासवेधी चतुष्पदे ।।१९।।
षण्मासादपराङ्गे च सर्वं समफलं भवेत् ।
अहोरात्रेण तत्क्षेत्ररक्षां कृत्वा दिशां बलिम् ।।२०।।

उनके मुख से उत्पन्न शैलोदक क्षणभर में, क्रोड-देश (काँख) से
न्न एक दिन में वेधक बन जाता है । भुजाओं से उत्पन्न क्षणवेधी; चतुष्पद
मासवेधी तथा अन्यान्य अंगों से प्रादुर्भूत शैलोदक षाण्मासिक होता है ।
भाँति सभी के फल समझने चाहिए ।

एक अहोरात्र (एक दिन-रात पर्यन्त) तक उस क्षेत्र का रक्षण दिग्बलि प्रदानपूर्वक एक लाख की संख्या में जाप करने के पश्चात् उस प अमृत का ग्रहण करना चाहिए ॥१९-२०॥

कृत्वा लक्षं जपित्वा तु गृह्णीयादमृतं परम् ।
शरदग्रीष्मवसन्तेषु हेमन्ते वापि चर्चिता ॥२१॥
आयसे ताम्रपात्रे च तत्तैलाम्बुमयेऽथवा ।
शैलोदकपलान्यष्टौ पलं क्षीरं विनिक्षिपेत् ॥२२॥
क्षीरावशेषं संक्वाथ्य त्रिःसप्ताहं पिबेन्नरः ।

शरद्, ग्रीष्म, वसन्त तथा हेमन्त ऋतुओं में, लोहे या ताँबे के प में अथवा उसी के तैल या जल से परिपूर्ण पात्र में पूजनोपरान्त ग्रहणीय क गया है ।

आठ पल (एक प्राचीन तौल) शैलोदक तथा एक पल दूध मिला उसका काढ़ा बनायें और तीन सप्ताह तक पान करें ॥२१-२२॥

जीवेद्वर्षसहस्रं तु वलीपलितवर्जितः ॥२३॥
कुलत्थाष्टगुणं वारि पचेदष्टावशेषतः ।
चतुर्गुणेन तेनाथ पाचयेच्च पुनर्घृतम् ॥२४॥

उक्त प्रकार की विधि अपनाने वाला व्यक्ति वलीपलित रोग विमुक्त होकर सहस्रों वर्ष तक पृथिवी पर विद्यमान रहता है ।

एक भाग कुलथी तथा आठ भाग जल मिलाकर आग पर पका जब अष्टांश भाग में से एक भाग शेष रह जाय तो उसके चौथाई भाग में डालकर पुनः पकायें ॥२३-२४॥

लिह्यात् समेन मधुना त्रिसप्ताहं तमन्वहम् ।
द्विरष्टवार्षिको बालः सहस्रायुर्भवेद् ध्रुवम् ॥२५॥
अवशिष्टं कुलत्थं तु संयोज्य मधुसर्पिषा ।
भक्षयेद्वर्षमेकं तु प्राप्नोत्ययुतजीवितम् ॥२६॥

अब शेष बचे हुए घृत के बराबर मधु मिश्रित कर तीन सप्ताह लगातार सेवन करे तो वह षोडशवर्षीय बालक के समान किशोरावस्था प्राप्त हो जाता है तथा निःसन्देह रूप से वह सहस्र वर्षों तक जीवन धा किये रहता है ।

इसके अनन्तर शेष बचे हुए कुलत्थ को घी तथा मधु मिलाकर से करे तो वह दश सहस्र वर्षों की आयु प्राप्त कर लेता है ॥२५-२६॥

तत्सिद्धतैलेनाभ्यङ्गं भक्षणं चैव कारयेत् ।
पामां विचर्चिकां दद्रुं कुष्ठं च सहसा जयेत् ।।२७।।
वलीपलितनिर्मुक्तः सहस्रायुर्भवेन्नरः ।
यः पिबेत् प्रातरुत्थाय शैलाम्बुचुलकत्रयम् ।।२८।।

शैलोदक को तैल में पकाकर उस तैल की मालिश शरीर पर करने खुजली, विचर्चिका, दद्रु (दाद) एवं कुष्ठादि रोगों का नाश हो जाता है। ह मनुष्य वलीपलित रोग से मुक्त होकर सहस्र वर्षों की आयु प्राप्त कर ता है ।

जो व्यक्ति सबेरे उठकर नित्य तीन चिल्लू शैलोदक जल पी लेता वह छः महीने में वलीपलित से छूटकर हजार वर्षों की आयु वाला हो ता है ।।२७-२८।।

षण्मासेन सहस्रायुर्वलीपलितवर्जितः ।
अथवा सूतकं देवि वारिणा सह मर्दयेत् ।।२९।।
मासेनैकेन देवेशि नष्टपिष्टं भविष्यति ।
मासमात्रं समश्नीयात् स भवेदजरामरः ।।३०।।

हे देवेशि! शैलोदक के स्वरस से पारे का मर्दन करने पर मात्र एक हीने में ही वह नष्टपिष्ट हो जाता है ।

उक्त रस का एक मास तक प्रयोग करने के फलस्वरूप प्रयोक्ता जरा-ण से भयमुक्त होकर देवताओं के समकक्ष हो जाता है ।।२९-३०।।

अथवा तं रसं हेम्ना पाचयेत् खदिराग्निना ।
गुटिका सुन्दरी नाम्ना सर्वामयनिवारिणी ।।३१।।
कर्ता हर्ता स्वयं सिद्धो जीवेदाचन्द्रतारकम् ।
अथ तेनोदकेनैतत् क्षीरार्धं पायसं पचेत् ।।३२।।

अथवा उक्त रस को स्वर्ण के साथ मिलाकर खैर (खदिर) की लकड़ी लाकर उस अग्नि पर पका लें तो समस्त रोगनाशिनी सुन्दरी नामक गुटिका जायेगी । इस प्रकार का साधक नभमंडल में चन्द्र एवं तारागणों की द्यमानता तक कर्ता, हर्ता तथा स्वयंसिद्ध बनकर जीवित रहता है ।

मासमात्रप्रयोगेण वलीपलितवर्जितः ।

शैलोदक के जल में दुग्ध मिलाकर पायस (खीर) का पाक करें । धा दूध जल जाने पर उस खीर का सेवन एक महीने तक करने से मनुष्य लीपलित रोग से रहित हो जाता है ।।३१-३२।।

पक्त्वा तेनाम्भसा पथ्यां षष्टित्रिशतसङ्ख्यया ।।३३।।
मधुना भाण्डमापूर्य विधाय च विधानकम् ।
दिने दिने तथैवैकं प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ।।३४।।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षसहस्रकम् ।

हरीतकी (हरड़) को तीन सौ साठ (३६०) की संख्या में ले शैलोदक जल के साथ आग पर पका लें। तदनन्तर किसी पात्र में मधु भ उसमें पक्व हरड़ को डालकर विधिवत् एक-एक हरड़ प्रतिदिन सेवन क इसके प्रयोग द्वारा वलीपलित रोग से विरहित होकर मानव हजार वर्षों धरती पर विद्यमान रहता है ॥३३-३४॥

जले क्षिप्तैस्तु लोहैश्च शैलोद्भूतानि भक्षयेत् ।।३५।।
क्षीराहारं च जीर्णान्ते वज्रकायो भवेन्नरः ।
तेनोदकेन संमर्द्य चाभ्रकं क्वाथयेत् प्रिये ।।३६।।
कटुत्रययुतं खादेज्जीवेद्वर्षसहस्रकम् ।

उसके जारित होने पर दुग्धाहार लेते हुए जो मनुष्य उसका स करता है वह वज्रांग बन जाता है अर्थात् उसके अंग वज्र के समान क हो जाते हैं।

शिवजी बोले— हे प्रिये! शैलोदक के जल से अभ्रक को मसल उसका क्वाथ बना लें। तदनन्तर उसे त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च तथा पी के साथ खायें तो मानव जीवन सहस्र वर्षों तक के लिए सुरक्षित हो ज है ॥३५-३६॥

अथवा रसकर्षैकं तज्जलेन विमर्दयेत् ।।३७।।
इङ्गुदीफलमध्यस्थं तच्छैलोदकमध्यगम् ।
कालेन स्वगुणैर्वश्या कामिनी तस्य जायते ।।३८।।

अथवा एक कर्ष की मात्रा में पारद को उसके जल से मर्दित कर लें। उसे इंगुदी फल के मध्य तथा बाद में शैलोदक के बीच स्थापित करे तो व क्रमानुसार उसके गुणों से तरुणी नारी भी वशीभूत हो जाती है ॥३७-३८॥

षण्मासं तन्मुखे धार्यं वज्रकायं करोति तम् ।
दशनागसमप्राणो देवैः सह स मोदते ।।३९।।
गृहीत्वा त्रिफलां तत्र शैलवारिणि निक्षिपेत् ।
यदा शिलेव तच्च स्याद् गृहीत्वा चूर्णयेत्ततः ।।४०।।

छह महीने तक उसे मुख में रखने से शरीर वज्र के समान सुदृढ़ हो जाता है तथा दश सहस्र हाथियों के समान शक्ति-सम्पन्न बनकर देवों के साथ विचरण करता है ।

शैलोदक के जल में त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) को भिंगो दें। जब वह पत्थर के समान कड़ा हो जाय तो उसे निकालकर चूर्ण के रूप में बना लें ।।३९-४०।।

कान्तजीर्णं रसं तेन सार्धं रसघृतप्लुतम् ।
भक्षयेद्वर्षमेकं तु ततः क्षीराशनो भवेत् ।।४१।।
उदयादित्यसङ्काशो मेधावी प्रियदर्शनः ।
नीलकुञ्चितकेशश्च जीवेदाचन्द्रतारकम् ।।४२।।

कांतलौहजारित रस के साथ उस रस तथा घृत के अनुपान से एक साल तक भक्षण करें । औषध सेवन-काल में केवल दुग्धाहार ही ग्रहण करें। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य उदयकालीन सूर्य के समान प्रभावान, मेधावी तथा प्रियदर्शी बनता है । उसके केश भी श्यामवर्ण वाले तथा घुँघराले बन जाते हैं । आकाश में चन्द्रमा एवं ताराओं की अवस्थिति बने रहने तक वह संसार में जीवित रहता है ।।४१-४२।।

पारदं हरितालं च शिलां माक्षिकमेव च ।
गन्धकं च विषं चैव सर्वमेकत्र कारयेत् ।।४३।।
मर्दयेत् खल्वपाषाणे मातुलुङ्गरसेन तु ।
तेन प्रमर्दितं शुल्वं काञ्चनं भवति ध्रुवम् ।।४४।।

पारद, हरिताल, मन:शिला (मैनसिल), माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक), गन्धक तथा विष (वत्सनाभ) को एक साथ संगृहीत करें । तत्पश्चात् मातुलुंग (बिजौरा) के रस में पत्थर के खरल में डालकर उसे खूब घोंटे । इस प्रकार से मर्दित शुल्व (ताँबा) नि:सन्देह रूप से स्वर्ण में परिणत हो जाता है ।।४३-४४।।

उपयुञ्जति मासैकं वलीपलितवर्जितः ।
सहस्रमायुषां जीवेन्महाबलपराक्रमः ।।४५।।
शैलोद्भूतां हरिद्रां च चूर्णयेत्तस्ययोगतः ।
हेमत्वं लभते नागो बालार्कसदृशप्रभः ।।४६।।

इसका एक महीने तक लगातार सेवन करके वलीपलित रोग से आक्रान्त मनुष्य नीरोग तथा पराक्रमशाली बनकर सहस्र वर्षों तक पृथिवी पर जीवित रहता है ।

शैलोद्भूता तथा हलदी को उसके संमिश्रण से चूर्ण करने पर ना (सीसा) भी उगते हुए सूर्य के समान दीप्तिमान होकर स्वर्ण के रूप में बद जाता है ॥४५-४६॥

शैलोदके विनिक्षिप्य भूशैलेयक्रमेऽपि वा ।
ज्ञात्वा कालप्रमाणेन वेधयेत्पारदं ततः ।।४७।।
रक्तक्षारयुतं ध्मातं सुवर्णेन च मारितम् ।
शतांशेन तु लोहानां सर्वेषां हेमकारकम् ।।४८।।

शैलोदक अथवा भू-शैलोदक में प्रक्षेपित करने से यह काल क्रमानुसार पारद का वेधन कर डालता है । रक्तक्षार से संयुक्त कर उसे आ पर फूँक दे तथा स्वर्ण से मारण करें तो यह अपने सौवें भाग से ही सम्पू धातुओं को स्वर्ण में परिवर्तित कर देने वाला बन जाता है ॥४७-४८॥

द्वितीयसारणं प्राप्य सहस्रांशेन सिद्ध्यति ।
तं षोढा धारयेद्वक्त्रे दिव्यत्वं लभते ध्रुवम् ।।४९।।

अब उसके सहस्रांश से ही द्वितीय सारणा पाकर यह सिद्ध हो जा है । इसका साधनकर्ता व्यक्ति छह प्रकार से मुख में स्थापित करने पर दिव्यत को पा लेता है ॥४९॥

निचुले बकुले चैव किंशुके मधुकेऽपि च ।
इङ्गुदीफलमध्ये च रजनीद्वयमध्यके ।।५०।।
अमृतास्वरसे वाथ मुस्ताकन्दौषधेषु च ।
विधाय छोटकं तत्र क्षिप्त्वा तेन च मर्दयेत् ।।५१।।

इसे निचुल, बकुल (मौलसिरी), किंशुक (पलाश) तथा मधू (महुआ) अथवा इंगुदी के फल के बीच में, हलदी के मध्य स्थापित कर या गुरुच के स्वरस अथवा मुस्ता (नागरमोथा) के कंद द्वारा इसका पिण बनाकर उसमें रख दें । तदनन्तर इसे खूब मर्दित करें ॥५०-५१॥

त्रिफलाव्योषकल्केन पेषयित्वा प्रयत्नतः ।
पादेन कनकं दत्वा पारदं तत्र योजयेत् ।।५२।।
क्षिपेच्छैलाम्बुमध्यस्थं गुटिका वज्रवद्भवेत् ।
पूर्ववत् सारणा कार्या पूर्ववत् सिद्धिदं भवेत् ।।५३।।

त्रिफला तथा व्योष (सोंठ, छोटी पीपर तथा कालीमिर्च) के कल से पीसकर चतुर्थ भाग में धतूरा डालकर उसमें पारा मिला दें । इसके अनन्त इसे शैलोदक के मध्य में रख छोड़ें तो यह गुटिका वज्रतुल्य कठोर रूप

लेती हैं। तत्पश्चात् पूर्व की भाँति सारण करे तो सिद्धि भी पहले की ही तरह होती है ॥५२-५३॥

मुखे तां च विधृत्यात्र सहस्रायुर्भवेच्छिवे! ।
द्वितीयसारणायोगाज्जायते लक्षवेधिकः ॥५४॥
तं छोटं (गोलं) धारयेद्वक्त्रे लक्षायुर्जायते नरः ।
चतुर्थसारणां प्राप्य कोटिवेधी भवेच्च यः ॥५५॥

शिवजी ने पार्वती से कहा— हे शिवे ! उसे मुख में धारण करने से मनुष्य सहस्र वर्षजीवी बनता है । द्वितीय सारण के फलस्वरूप वह लक्षवेधी बनता है ।

उस गोला को मुख में रखने से मनुष्य लक्ष वर्षजीवी होता है । चतुर्थ सारण के पश्चात् वह कोटिवेधी गुण वाला हो जाता है॥५४-५५॥

कोट्यायुर्जायते तस्य खेचरत्वं च लभ्यते ।
पञ्चमे दशकोटिश्च षष्ठे कोटिशतं भवेत् ॥५६॥
यावच्चन्द्रार्कजीवित्वं लभते मनुजश्च सः ।
ददाति सप्तमे वापि सारणा गुटिका परा ॥५७॥

इससे मानव करोड़ों वर्ष की आयु वाला बनता है । इसके द्वारा वह खेचरी विद्या (आकाशचारिता) से भी सम्पन्न हो जाता है । पाँचवीं सारण में दश करोड़ तथा छठी सारण के पश्चात् मानव सौ करोड़ वर्ष की आयु पाने में भी समर्थ हो जाता है ।

आकाश में जब तक सूर्य-चन्द्र की विद्यमानता रहती है तब तक मानव जीवन भी स्थिर रहता है । सातवीं सारण के उपरान्त यह गुटिका,॥५६-५७॥

खेचरी नाम विख्याता भैरवेण प्रयोजिता ।
यः कोऽपि राजिकामात्रां मासमेकं तु भक्षयेत् ॥५८॥
वज्रदेहस्य सिद्धिः स्याद्दिव्यस्त्रीजनवल्लभः ।
क्रियया चानया सर्वः स्वेच्छया शिवतां व्रजेत् ॥५९॥

खेचरी नाम से प्रसिद्ध हो जाती है और भैरव द्वारा प्रयुक्त होती है। एक मास तक एक राई की मात्रा के बराबर जो भी प्राणी इसका सेवन करता है उसकी देह वज्रतुल्य हो जाती है और वह दिव्यांगनाओं का प्रियपात्र बन जाता है । इस प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य अपनी इच्छानुसार शिवत्व प्राप्त कर लेने का अधिकारी बन बैठता है ॥५८-५९॥

नानाविधफलां चान्यां गुटिकां शृणु सुन्दरि! ।
शुद्धं विधाय च रसं गन्धकं तत्र जारयेत् ।।६०।।
त्रिगुणे गन्धके जीर्णे तेन हेम तु कारयेत् ।
कारयेद्भस्म सूतं तु काञ्चनं तत्तु सूतकम् ।।६१।।

शिवजी बोले— हे सुन्दरि ! अब तुम अनेक प्रकार की फलदायिनी इस गुटिका के सम्बन्ध में सुनो ।

इन्हें शुद्ध करके गंधक की जारणा करें । त्रिगुणित गंधक के जीर्ण हो जाने के अनन्तर उसे स्वर्ण का रूप दें अर्थात् पारद का भस्म बना डालें वह पारद ही स्वर्ण-स्वरूप है ॥६०-६१॥

भस्मन्यत्र च सूतस्य शिलां साम्येन सङ्क्षिपेत् ।
जीर्णेन तेन सूतेन वज्ररत्नं तु जारयेत् ।।६२।।
जारयेद्वज्रभस्मैतत् सिन्दूरारुणसन्निभम् ।
तद्भस्म जीर्यते सूते त्रिगुणे तु सुरार्चिते ।।६३।।

अब इस पारद भस्म में बराबर की मात्रा से शिला (मैनसिल) मिला ले तब उस जीर्ण पारे के द्वारा वज्ररस की जारणा करें । इस वज्र भस्म को जारित करने पर यह सिन्दूर की तरह लाल रंग वाला हो जाता है । वह भस्म त्रिगुणान्वित देवताओं द्वारा वंदित पारद में जीर्ण हो जाता है ॥६२-६३॥

हाटके सा नयेत्सम्यग् गुटिकां तेन कारयेत् ।
तथा लोहान् समावेष्ट्य कृत्वास्ये तां च साधकः ।।६४।।
नष्टक्षयो भवेत् सोऽपि चादृश्यो देवदानवैः ।
लक्षवर्षसहस्राणि निर्बलो बलवान् भवेत् ।।६५।।

तत्पश्चात् उसे स्वर्ण में भली-भाँति मिलाकर गुटिका बना लें । पुनः उसे धातुओं से आच्छन्न कर साधक मुख में रखे । इसके द्वारा मनुष्य का कभी क्षय नहीं होता । वह देवताओं तथा दानवों के लिए भी दृश्यमान नहीं होता सहस्र लक्ष वर्ष पर्यन्त वह जीवित रहता तथा अशक्त व्यक्ति भी बलशाली बन जाता है ॥६४-६५॥

शूलिनीशक्तिसंयुक्ता रत्नैश्च गुणभूषणैः ।
वक्त्रे करे च विधृता सर्वामयनिवारिणी ।।६६।।
गुटिका सा वरारोहे मधुरत्रितयान्विता ।
वक्त्रस्था नाशयेत् साक्षात् पलितं वलितं तथा ।।६७।।

शूलिनी शक्ति से संयुक्त गुणाभूषण रत्नों द्वारा मुख और हाथ में प्रयुक्त करने पर समस्त रोगों का नाश हो जाता है ।

शिवजी ने कहा— हे वरारोहे! त्रितय मधुरान्वित इस गुटिका को मुख में रखने से वलीपलित रोग का शमन होता है ॥६६-६७॥

शिवशक्तिश्च देवेशि ! रसाश्रिततयोच्यते ।
हेम तारं तथा भानुः समभागाद्धि कारयेत् ।।६८।।
स्त्रीरजोऽन्तः स्थापयित्वा पद्मसूत्रेण वेष्टयेत् ।
सिञ्चेच्छीतोदकेनैतद्यन्त्रस्थाने निधापयेत् ।।६९।।

हे देवेशि ! इसका आश्रयण ही शिवशक्ति कही जाती है । स्वर्ण तथा ताँबा को बराबर भाग में लेकर नारी-रज में स्थापित कर उसे पद्म-सूत्र से आवेष्टित करे । तदनन्तर शीतल जल से इसका सिंचन कर यन्त्र में स्थापन करे ॥६८-६९॥

रणे राजकुले दूते दिव्यकार्येषु योजयेत् ।

रणभूमि, राजसभा, दौत्यकर्म तथा दिव्यकर्मों में इसे प्रयुक्त करना चाहिए ।

वैक्रान्तमभ्रकं कान्तो रसकश्च तथायसम् ।।७०।।
बिभीतकेन संयुक्तं माक्षिकं हेमतुल्यकम् ।
समावर्त्य ततः सूतं योजयेत् पादयोगतः ।।७१।।

वैक्रान्त, अभ्रक, कान्त, रस, लौह तथा बिभीतक (बहेड़ा) से संयुक्त कर माक्षिक एवं बराबर की मात्रा में स्वर्ण का आवर्तन करने के पश्चात् चौथाई भाग में पारद मिला दें ॥७०-७१॥

कुमारीरससंयुक्ता कृता हि गुटिका शुभा ।
रोगान्मृत्युं जरां हन्ति वक्त्रस्था नात्र संशयः ।।७२।।
पञ्चताराद्वरारोहे ! सूतकद्वयमेव च ।
त्रयो गगनभागाः स्युरेकैकं हेमकान्तयोः ।।७३।।

पुनः घृतकुमारी (घीकुआर, ग्वारपाठा नामक पौधा) के रस में मिश्रित कर मंगलकारिणी वटी का निर्माण कर लें । इसे मुख में रखने से निःसन्देह ही समस्त व्याधियों तथा जरा-मृत्यु का निवारण होता है ।

तदनन्तर शिवजी ने कहा— हे वरारोहे ! इसमें पाँच भाग रजत (चाँदी), दो भाग पारद, तीन भाग अभ्रक, एक भाग स्वर्ण तथा एक भाग कान्त लौह का होना चाहिए ॥७२-७३॥

अर्धं शुल्बाद्विधायैतैगुटिकां कामसुन्दरीम् ।
भक्षयेदजरश्चैव भवेत्तेन महाबलः ।।७४।।
सूतभस्म पलैकं च मृतकान्तः पलोन्मितः ।
एकीकृत्य च तत्सर्वं मध्याज्याभ्यां तु पेषयेत् ।।७५।।

इस सबका संमिश्रण ताँबे के परिमाण से आधा ही रखें । अब आधा भाग ताँबा ग्रहण कर कामसुन्दरी नामक वटी बनाकर सेवन करें । इसके प्रयोग के परिणामस्वरूप मनुष्य बलशाली बनकर वृद्धावस्था से रहित हो जाता है ।

एक पल के परिमाण में पारा भस्म और एक ही पल कान्तलौह भस्म को लेकर मधु तथा घृत के साथ पीस कर, ॥७४-७५॥

गुटिकां कारयेद् देवि ! त्रिवारं तदनन्तरम् ।
एकैकं भक्षयेन्नित्यं वर्षमेकं निरन्तरम् ।।७६।।
जीवेद्वर्षसहस्राणि रुद्रतुल्यो महाबलः ।

गोली बना लें । हे देवि ! तत्पश्चात् एक वर्ष तक प्रतिदिन दिन में एक-एक गोली तीन बार सेवन करें । इस प्रकार के प्रयोग से मनुष्य शिवतुल्य सर्वशक्ति-सम्पन्न होकर हजारों वर्ष तक जीवित रहता है ॥७६॥

इति शैलोदककल्पः सम्पूर्णम्

इस प्रकार शैलोदककल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ श्वेतपुनर्नवाकल्पः

पुनर्नवाया मूलं तु शुभ्रं गोघृतमिश्रितम् ।
अञ्जितं हरति क्षिप्रं नेत्रान्तरगता रुजः ।।१।।
क्षीरेण पुष्पं मधुनाश्रुवाहं भ्रुवोश्च कण्डूं पटलं च नील्या ।
नेत्रान्धतां काञ्जिकया निहन्ति पुनर्नवा नेत्रनवं करोति ।।२।।

श्वेत पुनर्नवा (गदहपूरना) की जड़ को गाय के घी के साथ मिलाकर नेत्रों में अंजन की भाँति लगाने से चक्षुरोगों का शीघ्र ही विनाश हो जाता है।

इसे दूध के साथ लेने से आँखों की फूली, शहद से लेने पर नेत्रों से पानी गिरना, नीली से भौंहों का कंडू (खुजली) और पटल (पाटला) तथा कांजी के अनुपान द्वारा अन्धत्व का निवारण होता है । इस पुनर्नवा के प्रयोग से नेत्रों में नयापन की अनुभूति होती हैं ॥१-२॥

नक्तान्ध्ये च दिवान्ध्ये च क्षीरं युञ्जीत पूर्ववत् ।
छायाशुष्कं तु तच्चूर्णं समूलफलपल्लवम् ।।३।।
सिन्धूत्थं गोघृतेनाक्तं गुल्मप्लीहविनाशनम् ।
तच्चूर्णं सितया साकं यद्वा क्षीरेण यः पिबेत् ।।४।।
प्रभातकाले सततं स जीवेच्छरदां शतम् ।
चूर्णं ज्योतिष्मतीयुक्तं कामानलविवर्धनम् ।।५।।

इसका प्रयोग नक्तान्ध्य (रात में दिखाई न पड़ना, रतौंधी नामक रोग) तथा दिवान्ध्य (दिन में न देख सकना) में दूध के साथ करना चाहिए।

सिन्ध-प्रदेश में उत्पन्न पुनर्नवा के मूल, फल तथा पत्तियों को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण बना लें । उस चूर्ण को गोघृत के साथ खाने से गुल्म तथा प्लीहा (तिल्ली या बरवट नामक रोग) रोग का नाश कर डालता है । इसका चूर्ण मिश्री या गोदुग्ध के साथ प्रात:काल नित्य खाने से शतायु बनता है । ज्योतिष्मती (मालकंगनी) के साथ इसका सेवन कामवर्धक होता है ॥३-५॥

तज्जटां वारिणा पिष्ट्वा नेत्ररोगेषु योजयेत् ।
शिखामधुसमायुक्तं सेवितं च जरां जयेत् ।।६।।
पुनर्नवाशिखाचूर्णं पलार्धं पयसा सह ।
मासैकं मासयुग्मं वा जीर्णं पीतं विनाशयेत् ।।७।।

पुनर्नवा की जटा को जल में पीसकर नेत्रों में लगाने से नेत्र रोगों तथा उसकी जड़ को पीसकर चूर्ण के रूप में मधु के साथ भक्षण करने से वृद्धत्व का नाश होता है ।

पुनर्नवा की शिखा का चूर्ण दूध के साथ आधा पल की मात्रा में एक महीने या दो महीने तक सेवन करने से जीर्ण पीतरोग (पुराना कामला रोग) का विनाश हो जाता है ॥६-७॥

क्षीरान्नेन विनश्यन्ति शिरोरोगज्वरादयः ।
पुष्यार्केण च सङ्गृह्य प्रातः श्वेतपुनर्नवा ॥८॥
समूलपर्णां सङ्गृह्य सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।
घृतेन मधुनालोड्य मासमात्रं निधापयेत् ॥९॥

इसके सेवन-काल में, दूध में पकाये गये अन्न का सेवन करने से शिरोरोग तथा ज्वरादि का निवारण होता है ।

जिस किसी रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र हो उस दिन प्रातःकाल श्वेत पुनर्नवा को पत्र एवं जड़सहित उखाड़ लायें । तदनन्तर उसका महीन चूर्ण बनाकर घी तथा मधु के साथ मंथन कर उसे एक महीने की अवधि तक रख छोड़े ॥८-९॥

वसन्तसमये चैव शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
अहन्यहनि भोक्तव्यं विडालपदमात्रकम् ॥१०॥
ततो मासान्तरे देवि चाम्पेयकुसुमप्रभः ।
अल्या समानः केशः स्याद् गौडदेशस्त्रियांमिव ॥११॥
बृहस्पतिसमो विद्वाञ्जीवेत्पञ्चशताब्दकम् ।

उक्त औषध को वसन्त ऋतु आने पर शुचितापूर्वक नित्यप्रति एक कर्ष की मात्रा में सेवन करें ।

शिवजी ने कहा— हे देवि! इस औषध के प्रभाव से मात्र एक महीने में ही चम्पा-पुष्प, भ्रमरावलि तथा गौड़देशीय महिलाओं के समान उसके केश दिखाई पड़ने लगते हैं । ऐसा व्यक्ति देवगुरु बृहस्पति के समान विद्वान बनकर पाँच सौ वर्षों तक जीवन धारण करता है ॥१०-११॥

तन्मूलेन प्रशान्तोष्मा ताम्रः स्वर्णत्वमाप्नुयात् ॥१२॥
तच्च योगेषु कनकं संयोज्य यदि भुज्यते ।
अनेककालजीवी स्यात् कन्दर्प इव मूर्तिमान् ॥१३॥

इति श्वेतपुनर्नवाकल्पः सम्पूर्णम् ।

पुनर्नवा की जड़ से ताँबा नामक धातु उष्ण तथा शांत होकर स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है । इसके साथ स्वर्ण मिलाकर भक्षण करने से मानव कामदेव के सदृश रूपवान होकर दीर्घकाल तक जीवित रहता है ॥१२-१३॥

इस प्रकार श्वेतपुननर्नवाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ रक्तपलाशकल्पः

पातालपत्रमादाय पलाशतरुबीजकम् ।
निष्कद्वयमितं तैलं मध्वाज्येन समं पिबेत् ।।१।।
मासमात्रेण योगीन्द्रो नक्षत्राण्यपि पश्यति ।
अनेककालजीवी स्यात् स्तूयमानः सुरासुरैः ।।२।।

पलाशवृक्ष के बीज तथा पाताल-पत्र को कूट कर उसमें एक कर्ष परिमाण में तैल मिला लें। इसके अनन्तर उन सभी की तौल के बराबर घी और शहद मिलाकर सेवन करें।

उक्त मिश्रण का निरन्तर एक मास तक प्रयोग करने वाला व्यक्ति योगिराज, आकाशीय नक्षत्रों का अवलोकन करने वाला, देवताओं द्वारा स्तुति-प्राप्त होकर बहुत काल तक जीवित रहने वाला होता है ॥१-२॥

धात्रीरसेन तद्बीजचूर्णं सम्यग्विभावितम् ।
सप्ताहं पयसा तद्वच्छोषयित्वा पुनः पुनः ।।३।।
सप्ताहसेवनात्तस्य दूरदृष्टिर्भवेन्नरः ।
सूर्यः प्रकाशे वेगे तु वायुर्बुद्धौ बृहस्पतिः ।।४।।
वाचा सरस्वतीं जित्वा जीवेदाचन्द्रतारकम् ।

धात्री (आँवला) के चूर्ण को आवँले के ही रस में एक सप्ताह तक भिंगों दें। पुन: उसी प्रकार उसे दूध में भिंगोकर सुखा डालें। सूखने पर उसको चूर्णित कर एक सप्ताह तक सेवन करने से दूरदर्शन की दृष्टि प्राप्त होती है। इस औषध का प्रयोक्ता कांति में सूर्य, द्रुतगति में पवन, बुद्धि में बृहस्पति तथा वाणी में देवी सरस्वती को भी विजित कर लेता है तथा वह आकाश में चन्द्रमा एवं ताराओं की विद्यमानता तक जीवनी-शक्ति प्राप्त कर लेता है ॥३-४॥

आतपे शोषितं तस्य प्रसूनजनितं रजः ।।५।।
क्षीरेणार्द्रीकृतस्निग्धभाण्डे विन्यस्य संस्थितम् ।
एकविंशदिनोर्ध्वं तु सुमुहूर्ते शिवान्तिके ।।६।।

धूप में शुष्कीकृत आँवले -पुष्प का बारीक चूर्ण दुग्धासिक्त पात्र में इक्कीस दिनों तक रख छोड़ें। अब किसी शुभ मुहूर्त में भगवान शिव के सन्निकट, ॥५-६॥

तद्भजेत् पयसाहारं काञ्जिकाम्लादिवर्जितम् ।
एकविंशदिनैस्तस्य कल्केन खेचरो भवेत् ।।७।।

वज्रेण तुल्यो गजवद्भीमसेनपराक्रमः ।
जरामरणनिर्मुक्तो कदाचित् क्षयं व्रजेत् ।।८।।

उस दूध का ही केवल सेवन करें । औषध सेवन-काल में काँजी या खट्टे पदार्थों का उपयोग न करे । इस कल्क के द्वारा इक्कीस दिनों में मनुष्य नभचारी बन जाता है ।

ऐसा प्राणी वज्रवत् कठोर, हाथी तथा भीमसेन (पाँडवों में से एक जो दश हजार हाथियों के बल से सम्पन्न माने जाते थे) के समान बलशाली बनकर जरा-मरण से विमुक्त हो जाता है तथा उसका कभी क्षय नहीं होता ।।७-८।।

तच्च चूर्णं समादाय पलपात्रं पिबेद्यादि ।
चतुष्पलेन दुग्धेन मासमात्रं जितेन्द्रियः ।।९।।
तन्मूलेन प्रशान्तोष्मा ताम्रः स्वर्णं प्रजायते ।
अनेककालजीवी स्यात् कन्दर्प इव दीप्तिमान् ।।१०।।

इति रक्तपलाशकल्पः सम्पूर्णम् ।

इसके चूर्ण को एक पल की मात्रा में चार पल दूध के साथ ब्रह्मचर्य-पूर्वक लगातार एक महीने तक सेवन करे । उसके मूल से ताँबे की उष्मा शांत होती तथा वह स्वर्ण में परिणत हो जाता है ।

इसके प्रयोग से मनुष्य कामदेव के समान रूपवान बनकर दीर्घकाल तक जीवन धारण करता है ।।९-१०।।

इस प्रकार रक्तपलाशकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ ब्रह्मकल्पः

ब्रह्मवृक्षस्य पञ्चाङ्गं छायाशुष्कं सुचूर्णितम् ।
मध्वाज्याभ्यां लिहेत्कर्षं वर्धयेत् स जरां जयेत् ।।१।।
जीवेद्वर्षसहस्रैकं दिव्यकायो भवेन्नरः ।
ब्रह्मवृक्षमतिस्थूलं छेदयेदर्धभागतः ।।२।।

ब्रह्मवृक्ष (सम्भवत: शिरीष वृक्ष) के पंचांग (मूल, पुष्प, फल, पत्र वं छाल) को लेकर छाया में उसका शुष्कीकरण कर लें । तदनन्तर उसका ूक्ष्म चूर्ण बनाकर एक कर्ष की मात्रा में घी और मधु के साथ खाने से ारीरिक विकास होता तथा वार्धक्य पर भी विजय मिलती है ।

ऐसा व्यक्ति दिव्यकाय होकर सहस्रों वर्ष तक जीवित रहता है । इस वशाल वृक्ष का आधा भाग ही काटना चाहिए ।।१-२।।

मध्ये चार्धात् त्रिहस्तं स्यात्तस्य मूर्ध्नि जलं कृतम् ।
पञ्चजातीफलैः पूरयित्वा तार्क्ष्यें निरुध्य च ।।३।।
कुशैस्तु वेष्टयेत् सर्वं मृदालेप्य च गोमयैः ।
आवेष्ट्य वस्त्रखण्डेन लिम्पेन्मृद्गोमयैस्ततः ।।४।।

वृक्ष का यह कर्तित भाग तीन हाथ के बराबर होना चाहिए । अब सके ऊपरी सिरे पर जल रखकर पाँच की संख्या में ज़ातीफल (जायफल) उसे पूरित करे । पुन: रसांजन में निरुद्ध कर उन सभी को कुशावेष्टित कर ोबर तथा मिट्टी से लेपन कर दें । इसके उपरान्त उसे वस्त्राच्छादित कर गोबर था मिट्टी से पुन: लेपित कर दें ।।३-४।।

शुको गजपुटे देयः सम्यगारण्यकोद्भवः ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य सद्रवाणि फलानि च ।।५।।
क्षिपेन्मध्वाज्यसंयुक्ते भाण्डे तान्येव भक्षयेत् ।
यथेष्टं भूगृहान्तस्थः क्षीराहारी जरां जयेत् ।।६।।

तत्पश्चात् वनोद्भूत शुक (शिरीष) को गजपुट (भस्म निर्माण का ल्हा विशेष) में डालकर नीचे से आग जलाकर फूक दें । इसके पश्चात् चित् ठण्ढा हो जाने पर द्रवसहित उस फल को ग्रहण कर घृत तथा मधु पूर्ण पात्र में रख दें और इसका सेवन करें ।

अब भूमिस्थ गृह में अवस्थित होकर अपनी इच्छा के अनुसार आहार ग्रहण करते हुए इसे भक्षण करने के परिणामस्वरूप वृद्धत्व का नाश ा है ।।५-६।।

छिद्रं पश्यति मासाभ्यां निधानानि च भूतले ।
जीवेद् ब्रह्मदिनं यावत् सर्वरोगविवर्जितः ।।७।।

इसके दो महीने के सेवनोपरान्त भूगर्भ में छिपे द्रव्यों का अवलोकन किया जा सकता है । इसके प्रयोग द्वारा मानव समस्त प्रकार व्याधियों से मुक्त होकर ब्रह्मदेव की एक दिन की आयु के बराबर जीवि रहता है ।।७।।

ॐ नमो वासुदेवाय श्रीकेशवाय श्रीनृसिंहाय तेजसे कुरु कु स्वाहा। अनेन मन्त्रेण सप्तवारमधिमन्त्र्यौषधं भक्षयेत् ।।

उक्त औषध सेवन से पूर्व ऊपर लिखित मंत्रों द्वारा सात बार औ को अभिमंत्रित कर लेना आवश्यक बतलाया गया है ।

इति ब्रह्मकल्पः सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार ब्रह्मकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्या समाप्त हुई ।

अथ श्वेतपलाशकल्पः

पत्रं पुष्पं फलं ग्राह्यं सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ।
कृत्वा गोक्षीरसंयुक्तं भक्षयेद्वा समाहितः ।।१।।
क्षीराहारी भवेन्नित्यं वलीपलितवर्जितः ।
द्विरष्टवर्षकायोऽसौ जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।।२।।

इसके पत्ते, फूल और फल को लेकर महीन चूर्ण बना लें और उसे दुग्ध के अनुपान से खायें ।

प्रतिदिन केवल दूध का ही आहार ग्रहण करते हुए इसे खाने से लीपलित रोग का शमन होता तथा औषधसेवी षोडशवर्षीय अवस्था वाला कर तीन सौ वर्षों तक जीने में सफल होता है ॥१-२॥

तस्य पुष्पस्य निर्यासं तालकेन सुभावितम् ।
तेन पातालकल्केन द्वाविंशांशेन विन्दति ।।३।।
वङ्गो भवति तत्तारं कुन्दपुष्पस्य सन्निभम् ।
तस्य पुष्परसं चैव गन्धकं चैव भावयेत् ।।४।।
लिप्तानि सूक्ष्मपत्राणि पुटपाचेन काञ्चनम् ।

श्वेत पलाश पुष्प के गोंद को तालक से भावित कर उसके बाईसवें ग को पाताल कल्क से संयुक्त कर दें तो वंग (राँगा) कुन्दपुष्प के समान दी के रूप में हो जाता है ।

इसके पुष्परस में गंधक को भिंगोकर उसके पत्रों पर लेपन कर दें । : पुटपाक करने पर यह स्वर्ण के रूप में बदल जाता है ॥३-४॥

तस्य बीजस्य तैलेन गन्धकेन सुमर्दितम् ।।५।।
द्वात्रिंशदंशैस्तत्कल्कैः पारदः काञ्चनं भवेत् ।
श्वेतपालाशपञ्चाङ्गं चूर्णितं मधुना सह ।।६।।
कर्षैकं भक्षयेन्नित्यं व्याधिमृत्युजरापहम् ।

श्वेत पलाशबीज के तैल और गंधक को भलीभाँति मर्दन कर ले तो के बत्तीसवें अंश के कल्क से पारद भी स्वर्ण में परिणित हो जाता है ।

उक्त औषध के पंचांग का महीन चूर्ण बनाकर एक कर्ष की मात्रा में मधु साथ सेवन करने से रोग, मृत्यु तथा वृद्धता दूर हो जाती है ॥५-६॥

ब्रह्मायुर्जीवितं सिध्येत् स्पर्शमात्रान्न संशयः ।।७।।
अमृतं कुरु, अमृतमालिन्यै नमः ।
अनेन सर्वे सिध्यन्ति योगाः सप्ताभिमन्त्रिताः ।।८।।

इति रक्तपलाशकल्पः सम्पूर्णम् ।

उसके स्पर्शमात्र से निश्चय ही ब्रह्मा के समान आयु हो जाती

प्रयोग से पूर्व औषध को सात बार नीचे लिखे मंत्र से अभिमं
करना आवश्यक है । वह मंत्र इस प्रकार है —

अमृतं कुरु, अमृतमालिन्यै नमः ।

इस प्रकार रक्तपलाशकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत वि
व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ कृष्णहरिद्राकल्पः

आर्द्राशुष्कं निशाचूर्णं शुष्कभाण्डोदरस्थितम् ।
तन्निष्कपात्रं मूत्रेण गव्येनापीय शोधयेत् ।।१।।
सप्ताहं सेव्यमानं तु हन्यात् कुक्षिगतात् गदान् ।
उष्णोदकेन तत्पानात् सप्ताहाद्वीर्यवान् भवेत् ।।२।।

आर्द्रा नक्षत्र में हरिद्रा (हल्दी) को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण बना । अब इसको किसी पात्र में भरकर रख दें । उसमें से एक कर्ष की मात्रा चूर्ण लेकर गोमूत्र से पान करें तो शरीर का शोधन कर्म सम्पन्न होता है।

इसे एक सप्ताह तक सेवन करने पर सभी औदरिक रोग दूर हो जाते । यदि इसका सेवन उष्ण जल के साथ एक सप्ताह तक किया जाय तो र्यवर्धन होता है ॥१-२॥

शाल्यन्नं पयसाश्नीयाद् गवामाज्येन नित्यशः ।
निष्कमात्रं निशाचूर्णं मधुना सह मेलनात् ।।३।।
मासाच्च शिवकान्तिः स्याद् द्विमासात् कमलप्रभः ।
त्रिमासात् पीतकाकारश्चतुर्मासाज्ज्वरादिभिः ।।४।।
विमुक्तः पञ्चमासाच्च स्थिरयौवनगर्वितः ।

शालि धान्य (साँठी का चावल) को दूध के साथ प्रयोग करते हुए क कर्ष परिमाण में निशाचूर्ण (हल्दी-चूर्ण) को भी घी तथा मधु के अनुपान भक्षण करना चाहिए ।

एक महीने तक सेवन करने के पश्चात् प्रयोक्ता शिव के सदृश दीप्यमान हो जाता है । दो मास के सेवन से मनुष्य में कमल के समान न्दर्य आ जाता है । तीन महीने में पीतकाकार तथा चार महीने में ज्वरादि गों से रहित हो जाता है । पाँचवें महीने में स्थायी रूप से यौवनावस्था प्राप्त र लेता है ॥३-४॥

षण्मासात् सूर्यसङ्काशः सप्तमासान्मनोजवी ।।५।।
अष्टमासात् प्रसन्नात्मा दूरश्रवणवान्नरः ।
नवमासादनायासात् स्त्रीशतं चाभिसेवते ।।६।।

छह मास के सेवन से सूर्य सदृश तेजोमय, सात मास में मन के मान द्रुतगामी बनता है ।

आठ मास तक सेवन करते रहने पर प्रमुदित हृदय तथा दूरगामी वणेंद्रिय वाला हो जाता है । नवम मास में सहज ही सैकड़ों रमणियों के थ रमण करने में सक्षम हो जाता है ॥५-६॥

अनेकशास्त्रवेदी स्याद् दशमासनिषेवणात् ।
मासादेकादशान्मर्त्यः सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ।।७।।
इदं संवत्सरं यस्तु सेवते क्षीरपोऽन्वहम् ।
जरामरणनिर्मुक्तो हरिद्राचूर्णलोलुपः ।।८।।

इति कृष्णहरिद्राकल्पः सम्पूर्णम् ।

दशम मास में शास्त्रज्ञ तथा एकादश महीने में सर्वज्ञ बन जाता है। एक वर्ष तक केवल दुग्धाहार पर निर्भर रहकर जो हरिद्रा चूर्णसे व्यक्ति इसे सेवन करता है वह जरा-मृत्यु के भय से निर्भय हो जाता है।।७-८

इस प्रकार कृष्णहरिद्राकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

✲

अथ कटुरोहिणीकल्पः

पुष्यार्के रोहिणीचूर्णं वारिणा सह सेवितम् ।
ज्वरं हरन्ति दुर्वारं भ्रमसम्भ्रमकारकम् ।।१।।
पयसा चान्विता सम्यक् पलार्धेन विपाचिता ।
अष्टावशेषं तत्क्षीरं रात्रौ सर्वज्वरापहम् ।।२।।

रविवार के दिन पड़ने वाले पुष्य नक्षत्र में रोहिणी चूर्ण को जल के साथ सेवन करने वाला व्यक्ति दुर्दम्य ज्वर (भ्रम तथा संभ्रम आदि लक्षणों से युक्त) का भी शमन कर डालता है ।

इस कटुरोहिणी नामक औषध को जल में अष्टावशेष विधि से पकाकर (आठ भाग जल के साथ पकाने पर जब एक भाग जल शेष रह जाय) कपड़े से छान लें और रात्रि के समय अर्ध पल की मात्रा में पान करने से सम्पूर्ण प्रकार के ज्वर में लाभकारी होता है ॥१-२॥

प्रभातकाले संपीता विरेचनकरी स्मृता ।
पिष्ट्वाश्वत्थत्वचा कट्यां लेपाद्दाहज्वरापहा ।।३।।
तन्मूलं मधुना पीतं सर्वज्वरहरं नृणाम् ।
तच्चूर्णमर्कदुग्धेन भावितं सेवितं यदि ।।४।।

प्रात:काल पान करने पर यह विरेचन का कार्य करती है अर्थात् कोष्ठबद्धता नहीं होती । इसे पीपल वृक्ष की छाल के साथ पीसकर कमर में लेप लगाने से जलन एवं ज्वर का नाश होता है ।

इसकी जड़ का पान मधु के साथ करने पर समस्त प्रकार के ज्वरों का निवारण होता है । इसके चूर्ण को मदार के दूध में भिंगोकर, ॥३-४॥

ताम्बूलसहितं चैव कृत्वा तद्गुटिकात्मना ।
तृतीयकं ज्वरं हन्याच्चातुर्थिकमथापि वा ।।५।।
काञ्जिकेन समायुक्तं समस्तविषनाशकम् ।
वीरवृक्षस्य तन्मूलं कण्ठस्थं ज्वरनाशकृत् ।।६।।

पान के पत्तों के साथ पीसकर वटी बना लें और उसका सेवन करें तो तृतीय (तीसरे दिन आने वाला ज्वर) तथा चातुर्थिक (चौथे दिन आने वाला) ज्वर का भी शमन हो जाता है ।

यदि इसे काँजी के साथ पान किया जाय तो सभी प्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं । वीरवृक्ष (शृंगीवृक्ष) की जड़ को गले में बाँधने से ज्वर का निवारण होता है ॥५-६॥

शिवावीरजटामूलं कट्यां संवेष्ट्य तन्तुना ।
सरागेण गले बध्वा सर्वरोगनिवारणम् ।।७।।

इति कटुरोहिणीकल्पः सम्पूर्णम् ।

शिवा (हरड़), वीर (शृंगी) तथा जटामांसी (बालछड़) की जड़ लाल सूत में लपेटकर गले में बाँधने से सम्पूर्ण रोगों की समाप्ति होती है ॥७॥

इस प्रकार कटुरोहिणीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ अश्वगन्धाकल्पः

अश्वगन्धारजः श्लक्ष्णं पारदैः सह सेवितम् ।
अन्वहं कर्षमात्रेण सर्वामयविनाशनम् ।।१।।
धात्रीरसेन तच्चूर्णं कर्षं यष्ट्यापि सेवितम् ।
दिव्यदृष्टिर्भवेज्जन्तुर्जरामरणवर्जितः ।।२।।

बोलचाल की भाषा में इसे असगंध भी कहा जाता है । इसके बारीक चूर्ण को पारद के साथ मिलाकर नित्यप्रति एक कर्ष की मात्रा में सेवन करने से समस्त रोग विनष्ट हो जाते हैं ।

इसका चूर्ण ऊपर कथित परिमाण में आँवला के रस तथ मधुयष्टि (मुलेठी) के साथ प्रयोग करने से मनुष्य को निर्मल दृष्टि प्राप्त होती तथा वह जरा-मरण से दूर हो जाता है ॥१-२॥

निष्कमात्रं हि तद्बीजं गुडूच्यास्त्वग्भवं रजः ।
संयोज्य निष्कद्वयतः सेवयेदुष्णवारिणा ।।३।।
पीतं जयति दुर्वारं नानाविधगदानपि ।
तच्चूर्णं नवनीतेन सेवितं सामजालहृत् ।।४।।

अश्वगंध का बीज एक कर्ष तथा गुरुच की छाल का चूर्ण दो कर्ष मिलाकर उष्ण जल से सेवन करें ।

इसका पान करने से असाध्य रोगों पर भी विजय मिलती है । मक्खन के साथ इसके चूर्ण का प्रयोग सामदोष (त्रिदोष) का विनाश करता है।।३-४।।

तच्चूर्णं तैललेपेन प्रणश्यन्ति त्वगामयाः ।
पलार्धमस्य चूर्णस्य तिलं तद्द्विगुणं ततः ।।५।।
कुसुम्भमाषजं चूर्णमेतदाज्येन पाचितम् ।
अपूपं भक्षयेन्मासं वत्सरं वा जरां जयेत् ।।६।।

अश्वगंध चूर्ण आधा पल को एक पल तैल में मिलाकर पका लें । तदनंतर उस तैल की मालिश करने से चर्मरोगों का निवारण होता है ।

इसके आधा पल चूर्ण के साथ एक पल तिल तथा कुसुम्भ (बर्रे, इसमें से तेल भी निकलता है) एवं उड़द को चूर्णित कर घृत में मालपूआ के समान छान लें । एक मास या एक वर्ष तक इसके प्रयोग से मनुष्य के पास वृद्धावस्था नहीं फटकती ।।५-६।।

श्वेताश्वगन्धमूलेन रक्षाबन्धे कृते सति ।
दुर्बलोऽपि महाभारं वहेदक्लिष्टवेदनः ।।७।।
उपोष्य त्रिदिनं माघत्रयोदश्यां जपेद्धरेः ।
मन्त्रं भजेदश्वगन्धाचूर्णं शस्त्राभिघातहन् ।।८।।

इति अश्वगंधाकल्पः सम्पूर्णम् ।

श्वेत अश्वगंध की जड़ को हाथ में बाँध लेने पर अशक्त मनुष्य भी अधिक भार वहन करने में सक्षम हो जाता है और उसे किसी प्रकार की थकान नहीं मालूम पड़ती ।

तीन दिनों तक उपवास करने के पश्चात् माघ महीने की त्रयोदशी तिथि में भगवान विष्णु का स्मरण करते हुए इसके चूर्ण का सेवन करने के फलस्वरूप शस्त्राघातजन्य क्लेश की अनुभूति नहीं होती ।।७-८।।

इस प्रकार अश्वगन्धाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ अङ्कोलकल्पः

सितारुणहरित्कृष्णवर्णैश्चैव चतुर्विधः ।
अङ्कोलं गुरुहस्तस्य मूलं पूर्वदिगाश्रितम् ।।१।।
कर्पूरमधुसंयुतं नेत्रयोरञ्जनं यदि ।
दिनावसाने क्रियते नष्टदृष्ट्यवलोकनम् ।।२।।

अंकोल चार प्रकार के रंगों वाला पाया जाता है, यथा— श्वेत, अरुण, हरा तथा कृष्णवर्णीय । पूर्व दिशा की ओर से अंकोल की जड़ हस्त नक्षत्र से युक्त बृहस्पतिवार के दिन ग्रहण करनी चाहिए ।

इसके चूर्ण में कपूर तथा मधु मिलाकर सायंकाल नेत्रों में अंजन लगाने से खोयी हुई दृष्टि का पुनः पुनरावर्तन हो जाता है ॥१-२॥

एकविंशदिनैस्तस्य बीजं क्षौद्रसमन्वितम् ।
भजन्तं मानवं दृष्ट्वा सद्यस्सर्पो मृतिं नयेत् ।।३।।
तद्बीजचूर्णं मधुना पक्षे चान्द्रदिनान्तरे ।
एकोऽपि सेवते मर्त्यो जरामुक्तो युवा भवेत् ।।४।।

अंकोल के बीजों का सेवन इक्कीस दिनों तक मधु के साथ करने वाले व्यक्ति के दर्शन-मात्र से ही साँपों की तत्क्षण मृत्यु हो जाती है ।

चान्द्र दिवस के अन्तराल से इसके बीजों के चूर्ण का सेवन पक्ष में एक भी व्यक्ति करे तो वह वृद्धता से छूटकर यौवनावस्था को प्राप्त कर लेता है ॥३-४॥

तत्तैलमर्दितः सूतः पुटे बन्धत्वमाप्नुयात् ।
तन्निष्कमात्रं विन्यस्तस्ताम्रः स्वर्णत्वमाप्नुयात् ।।५।।
कृष्णाङ्कोलोत्थबीजानि चूर्णीकृत्य हि तेन च ।
श्लक्ष्णेन सम्यक् ताम्रस्य भाजनान्तं प्रलेपयेत् ।।६।।

इसके तैल में मर्दित पारद का बंधन होता है । इसे एक कर्ष परिमित ताम्र में डालने से वह स्वर्ण का रूप ले लेता है ।

ताम्र-भाण्ड को कृष्णवर्णीय जाति के अंकोल चूर्ण के द्वारा भली प्रकार से लेपित कर देना चाहिए ॥५-६॥

तद्वृक्षभाजनान्तस्थं निक्षिपेद्धानुसन्निधौ ।
तेन विस्तारितं तैलमादायाम्बुजतन्तुभिः ।।७।।
कृतं वर्त्या युतं चैव दीपेन कृतकज्जलम् ।
कज्जलेनाञ्जयेन्नेत्रमदृश्यकरणं भवेत् ।।८।।

अब उस ताम्र पात्र में अंकोल वृक्ष को स्थापित कर धूप में रख दें। द्रवित होने वाले उस तैल में कमलतन्तु की बत्ती बनाकर दीपक जला दें। उससे निकलने वाले काजल को आँखों में लगाने से मनुष्य अंतर्धान हो जाता है ।।७-८।।

अरुणाङ्कोलबीजस्य तैलं सम्यक् समाहृतम् ।
तेन प्रलिप्य ताम्रस्य पत्राणि पुटपाकयोः ।।९।।
कालिकागन्धसंयुक्तं निष्कमात्रं कृते सति ।
विनिष्कमात्रं स्वर्णेन स्वयं कनकतां व्रजेत् ।।१०।।

अरुण वर्ण के अंकोल बीज के तैल को ताँबे के पतले पत्तरों पर अच्छी तरह लेप लगा दें। पुनः पुटपाक बनाकर कालिकागंध को एक कर्ष की मात्रा में मिला दें। उसमें निष्कमात्र स्वर्ण मिलाने से वह स्वयमेव स्वर्ण में बदल जाता है ।।९-१०।।

विमर्द्य पारदं तेन मूषायामधरोत्तरम् ।
पुटीकृतं भवेत्तेन बध्येत च रसः क्षणात् ।।११।।

इति अङ्कोलकल्पः सम्पूर्णम् ।

उक्त तैल द्वारा पारद को मर्दित कर मूषा (भस्म तैयार करने का चूल्हा) में रख दें और ऊपर-नीचे से पुट देते रहें तो क्षणभर में ही पारद का बन्धन हो जाता है ।।११।।

इस प्रकार अङ्कोलकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ लक्ष्मणाकल्पः

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां गुरुपुष्ये च वा पुनः ।
संमन्त्र्य लक्ष्मणामूलं सोपचारं समुद्धरेत् ।।१।।
ॐ सर्वार्थसाधिन्यै लक्ष्मणायै स्वाहा ।
शुभं तन्मूलमादय कृष्णोन्मत्तफलस्थितम् ।।२।।
त्रिदिनं च स्वशुष्केण मन्त्रं चूर्णेन वश्यकृत् ।

कृष्णपक्षीय चतुर्दशी तिथि में अथवा गुरुवार के दिन पुष्य नक्षत्र रहने पर मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित करके लक्ष्मणा बूटी के मूल का उत्पाटन करें। मंत्र इस प्रकार है—

''ॐ सर्वार्थसाधिन्यै लक्ष्मणायै स्वाहा''

उसकी शुभकारी जड़ को लेकर काले धतूरे के फल पर तीन दिनों तक रख दें । अपने-आप सूखे हुए उस मूल से चूर्ण कर लें । तदनन्तर उस चूर्ण से मंत्र वशकारक हो जाता है ॥१-२॥

रोचनालक्ष्मणामूलं चन्दनं कुङ्कुमं समम् ।।३।।
मुखलेपादितः सर्वमवश्यनरमोहनम् ।
उद्धरेल्लक्ष्मणामूलं रक्तचन्दनमिश्रितम् ।।४।।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं स वश्यो भवति क्षणात् ।

गोरोचन, लक्ष्मणा की जड़, चंदन तथा कुंकुम (रोली) को समान भाग में पीसकर मुख पर लेपन करने से देखने वाले सभी प्राणी वश में आ जाते हैं ।

लक्ष्मणा बूटी की जड़ को उखाड़कर लाल चंदन के साथ जिसे दे दिया जाय तो वह वशीभूत हो जाता है ॥३-४॥

लक्ष्मणामूलतगरं सकुष्ठं नागकेसरम् ।।५।।
विलेपनादिदं लिङ्गे यावज्जीवं वशं नयेत् ।
लक्ष्मणामूलतगरतिलकोऽतिजनप्रियः ।।६।।

लक्ष्मण की जड़, तगर, कुष्ठ (कूठ) तथा नागकेशर —इन चारों को पीसकर लिंग पर लेप लगाने वाला व्यक्ति जन्म-भर के लिए नारी को अपने अधीन बना लेता है ।

लक्ष्मणामूल तथा तगर को मिलाकर मस्तक पर तिलकांकन करने से प्राणी वश में आ जाते हैं ॥५-६॥

ॐ नमो महेश्वराय सर्वजनवशं कुरु कुरु स्वाहा ।

लक्ष्मणामूलसौवीराञ्जनके सममात्रके ।।७।।

कृत्वाञ्जयेदक्ष्यमूभ्यां भवेद्वश्योऽखिलो जनः ।

लक्ष्मणा की जड़ तथा सौवीरांजन को समान भाग में लेकर नेत्रों में अंजन की भाँति लगाने से सभी मनुष्य उसके वशीभूत हो उठते हैं । प्रयोग काल में नीचे लिखे मंत्र का उच्चारण करें जो इस प्रकार से है—

''ॐ नमो महेश्वराय सर्वजनवशं कुरु कुरु स्वाहा''

लक्ष्मणामूल तथा तगर को बराबर की मात्रा में मिलाकर भाल पर तिलक लगाने वाला व्यक्ति सभी का मन मोह लेता है ॥७-८॥

यन्मूलं तगरं सम्यग्वारिणा योज्य साम्यतः ।।८।।

ललाटे तिलकं कृत्वा स्यात् सर्वप्रियदर्शनः ।

ॐ जयायै विजयायै स्वाहा ।।९।।

लक्ष्मणायाश्च मूलेन रजसा चन्दनस्य च ।

धूपयेत् सर्वमङ्गं च स भवेदखिलप्रियः ।।१०।।

लक्ष्मणा की जड़ और चन्दन का महीन चूर्ण बनाकर सर्वांग पर धूपित करने के फलस्वरूप वह समस्त जनों का प्रियपात्र बन जाता है ॥९-१०॥

धूपन-काल में निम्न मंत्र को बोलना चाहिए —

''ॐ जयायै विजयायै स्वाहा''

मूलं हि लक्ष्मणायाश्च क्षीरेण सह पाययेत् ।

पुंसस्तस्य विनश्यन्ति सर्वाण्यर्शांसि मासतः ।।११।।

प्रातर्मूलं लक्ष्मणायाः पिबेद् ब्राह्मीघृतेन च ।

पक्षेणैकेन बालानां ग्रहं नाशयति ध्रुवम् ।।१२।।

लक्ष्मणा की जड़ को दूध के साथ एक मास तक पीने से अर्श (बवासीर) रोग का विनाश हो जाता है ।

पन्द्रह दिनों तक लक्ष्मणा की जड़ को ब्राह्मीघृत के साथ प्रात:काल सेवन करने से सभी प्रकार के बालग्रह नष्ट हो जाते हैं ॥११-१२॥

ॐ नमो भगवते महेश्वराय स्वाहा ।

लक्ष्मणामूलमाबद्धं मूर्ध्नि चोरभयं तथा ।।१३।।

व्याघ्रदपि भयं तस्य न क्वचिच्च समुद्भवेत् ।

हस्ते च लक्ष्मणामूलं बद्ध्वा युधि भजेज्जयम् ।।१४।।

लक्ष्मणा की जड़ को शिर पर बाँधने से चौरभय या व्याघ्र-भय मनुष्य को नहीं रह जाता ।

लक्ष्मणा के मूल को बाहु में बाँध लेने पर संग्राम में विजय मिलती है ॥१३-१४॥

लक्ष्मणा की जड़ बाँधते समय निम्नलिखित मंत्रोच्चारपूर्वक उसे अभिमंत्रित कर लेना अनिवार्य है । मन्त्र इस प्रकार से है—

''ॐ नमो भगवते महेश्वराय स्वाहा''

ॐ हरिहराय स्वाहा ।
लक्ष्मणामूलमालिप्य सर्वेषां च भवेत्प्रियः ।।१५।।

लक्ष्मणा बूटी की जड़ को पीसकर शरीरांग पर लेपन करने वाला व्यक्ति सभी का प्रिय बन जाता है ॥१५॥

लेपन करने से पूर्व निम्न मंत्र पढ़ना चाहिए—

''ॐ हरिहराय स्वाहा''

ॐ वश्यं मे स्वाहा तन्मूलाय नमः ।
शिलोदकेन तन्मूलतिलकं वशयेन्नृपम् ।।१६।।
तन्मूलं पलमात्रं हि गोक्षीरेण विमिश्रयेत् ।
चतुर्मासं पिबेद्वन्ध्या ध्रुवं पुत्रवती भवेत् ।।१७।।

इति लक्ष्मणाकल्पः सम्पूर्णम् ।

शिलोदक के साथ इसके मूल का मस्तक में तिलक करने से राजपुरुष भी वश में आकर अनुकूल बन जाते हैं ।

तिलकांकन से पूर्व निम्नमंत्र बोलें—

''ॐ वश्यं मे स्वाहा तन्मूलाय नमः''

इसकी जड़ को गोदुग्ध में पीसकर एक पल की मात्रा में निरन्तर चार मास तक सेवन कर लेने से वन्ध्या नारी भी प्रजनन में सक्षम होकर निश्चित रूप से पुत्रोत्पत्ति करती है ॥१६-१७॥

इस प्रकार लक्ष्मणाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

✵

अथ ईश्वरीकल्पः

ॐ ईश्वरि सर्वदानववशंकरि राक्षस्यै स्वाहा ।
इति मन्त्रेण गन्धाद्यैरभ्यर्च्यावेष्ट्य सूत्रकैः ॥१॥
त्रिधा घटं हि ताम्रोत्थं मार्तिकं वा सुपूजयेत् ।
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा भक्त्वा स्तुत्या नमस्य च ॥२॥
तत्र सूर्योदयात् पूर्वं मन्त्रमष्टोत्तरं जपेत् ।

ऊपर लिखित मंत्र— "**ॐ ईश्वरि सर्वदानव वशंकरि राक्षस्यै स्वाहा**" के द्वारा गन्ध-पुष्पादि से पूजन-अर्चन करने के अनन्तर उसे सूत लेकर तीन बार लपेट दें। तदनन्तर ताम्रघट या मृत्तिका-घट की पूजा करें।

तत्पश्चात् प्रदक्षिणा करके भक्तिभाव से स्तुति तथा प्रणाम निवेदित करें। प्रणामोपरान्त सूर्योदय होने से पूर्व ही उक्त कथित मंत्र का एक सौ आठ बार जाप करें ॥१-२॥

अस्याश्च पादलेपेन दिनेनैकेन मानवः ॥३॥
विंशतिं योजनान्येत्य पुनरायाति चालयम् ।
ईश्वरीपुष्पपिष्टस्य लेपनं जनमोहनम् ॥४॥

इसका लेप पैरों में लगाकर मनुष्य एक दिन में बीस योजन (८० कोस) की दूरी तक गमनागमन कर सकता है।

ईश्वरी के फूल को रगड़कर लेपित करने से सभी मानव वशवर्ती बन जाते हैं ॥३-४॥

सद्यो जयति दुर्वारं वैरिणं विजयी भवेत् ।
अभ्यज्याज्यं मूर्ध्नि पुष्ये मन्त्रमुच्चार्य पूर्ववत् ॥५॥
ईश्वरी सकलां भीतिं छिनत्ति न हि संशयः ।
सहदेवीश्वरीमूलं मयूरशिखया सह ॥६॥

इसके साथ ही वह अपने दुर्जेय शत्रुओं पर भी विजय पा लेता है। पुष्य नक्षत्र में मन्त्रोच्चारपूर्वक ईश्वरी को घृत में मिलाकर शिर पर लेपन करने से सभी प्रकार के भय का निवारण निश्चय ही सम्भव हो जाता है।

सहदेवी (भूमि पर फैलने वाली एक लता विशेष) तथा ईश्वरी की जड़ को मयूरशिखा के साथ अभिमंत्रित कर स्वस्थ व्यक्ति मानिनी नायिका को भी अपने अधीन बनाने में सफल होता है ॥५-६॥

संमन्त्र्य मानिनीं स्वस्थः स्ववशां कुरुते सदा ।
ईश्वरीमूलमादाय ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥७॥

चूर्णितं नेत्रयोर्न्यस्तं काञ्जिकेन विषापहम् ।
तदेवासनसंयुक्तं जङ्गमादिविषं हरेत् ।।८।।

सूर्य या चन्द्रग्रहण के समय ईश्वरी की जड़ उखाड़कर चूर्णित कर
लें। इस चूर्ण को कांजी के साथ नेत्रों में लेप लगाने से विष का प्रभाव दूर
हो जाता है । इसी प्रकार के प्रयोग करने पर जंगमादि (कीड़े-मकोड़ों) विष
भी नष्ट हो जाते हैं ।।७-८।।

इति ईश्वरीकल्पः सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार ईश्वरीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या
समाप्त हुई ।

अथ शाल्मलीकल्पः

सितारुणहरित्पीतवर्णैं सा स्याच्चतुर्विधा ।
मूलं संपीड्य शाल्मल्यास्त्रिलोहपरिवेष्टितम् ।।१।।
वक्त्रान्तरगतं तत् स्याददृश्यकरणं ध्रुवम् ।

बोलचाल की भाषा में इसे सेमल भी कहा जाता है । इसका अत्यधिक ऊँचा होता है । इसमें से रूई भी निकलती है । इसके चार भेद गये हैं, जैसे— श्वेत, अरुण, हरा एवं पीला ।

इसके मूल को पिण्डाकार बनाकर तीनों लौह से वेधन करके में रखने वाला व्यक्ति अवश्य ही सबकी आँखों से ओझल हो जाता है किसी के लिए दृश्यमान नहीं होता ।।१।।

तन्मूलवत्फलं तैलं सितया सह सेवितम् ।।२।।
सप्ताहं तेन संसिद्धं भवेत् षोडशवद्वयः ।
अनेकनारीरमणो दीर्घजीवी स्मरोपमः ।।३।।

इसकी जड़ के बराबर की मात्रा में इसका फल तथा तैल मिल एक सप्ताह तक मिश्री के साथ सेवन करने वाला प्राणी षोडशवर्षीय कै अवस्था को प्राप्त कर अनेक रमणियों के साथ रमण करने में सामर्थ्यवा जाता है । ऐसा व्यक्ति कामदेव के समान रूप-सम्पन्न होकर बहुकाल बन जाता है ।।२-३।।

तद्वृक्षरंध्रे निक्षिप्य सरन्ध्रां लोहनालिकाम् ।
यावत् पूर्येत लोहस्य द्वारं तत्पयसा ततः ।।४।।
विकृस्यात्र विमर्द्येमं दहेद् गजपुटाग्निना ।
तं मिश्रितरसं वस्तु मण्डलं मधुना पिबेत् ।।५।।

इसके वृक्ष-गह्वर में छिद्रित लौहनलिका को प्रविष्ट कर दें जब नलिका उसके दुग्ध से भर जाय तब उसे बाहर निकालकर चूर्ण बना इसके पश्चात् गजपुट में रखकर नीचे से आग जला दें । उस मिश्रित र मधु के साथ वर्ष भर जो पान कर लेता हैं, ।।४-५।।

अनेककामरूपी स्यान्नानारूपं प्रयच्छति ।
अदृश्यत्वं स्वयं प्राप्य देवतुल्यो भवेदयम् ।।६।।
तद्रसेन द्रुतं तारं कृष्णवर्णत्वमाप्नुयात् ।
त्रिवारं तद्रसालिप्तं तत्पुष्पं सममिश्रितम् ।।७।।

वह व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुरूप अपने को बदल सकत अपनी अदृश्यता की शक्ति के कारण वह देवतुल्य हो जाता है ।

उसके रस का तीन बार लेपन करने तथा उसके बराबर भाग में उसके पुष्प का रस मिलाकर उस नीली-रस को नेत्रों में लगाने पर प्रयोक्ता को भी अदृश्य बना डालता है ॥६-७॥

नीलीरसेन नेत्रस्थमदृश्यं कुरुते नरम् ।
तत्पुष्पभृङ्गराजाभ्यां तैलमुत्पलकन्दजम् ॥८॥
पाचयेदायसे पात्रे स्वकेशं लेपयेन्नरः ।
सप्ताहात् पलितं हन्ति कपालतलरञ्जनम् ॥९॥

शाल्मली के पुष्प को भृंगराज (भँगरैया) के साथ मिलाकर कमल कन्द का तैल लोहे के बरतन में तैयार करें और उस लेप को बालों में लगायें। इस प्रयोग के द्वारा एक सप्ताह में ही केशों की श्वेतता दूर होती तथा कपाल-तल का भी रंजन होता है ॥८-९॥

मूलं च श्वेतशाल्मल्याः खर्परं हेममाक्षिकम् ।
मधुना नेत्रयोर्न्यस्य कदलीपत्रवेष्टनात् ॥१०॥
नष्टद्रव्यं निधानं वा भूगतं तेन पश्यति ।
तत्क्षीरमिश्रतैलेन पलं सूतं सुमर्दितम् ॥११॥
लवङ्गतुलया सार्धं वङ्गं स्तम्भयते ध्रुवम् ।

श्वेत शाल्मलि की जड़, खर्पर (विष - खपरा) तथा स्वर्णमाक्षिक— इन तीनों को नेत्रों में लगाकर केले के पत्तों से आँखों को ढँक लें तो भूमितल में गड़ा हुआ धन तथा कोषागार भी दृश्यमान हो उठता है ।

इसके दूध को तैल में मिलाकर एक पल परिमाण में मर्दित पारा, लौंग की एक तुला के साथ वंग (राँगा) निःसन्देह ही स्तम्भनकारक होता है ॥१०-११॥

ससितं तद्भवं मूलं पयसा सह सेवितम् ॥१२॥
अनेकनारीरमणं करोति स्मरसन्निभम् ।
तन्मूलवाजिगन्धाभ्यां पूगाभ्यां वाससा भृशम् ॥१३॥
घृतेन पाचितापूपान् एकविंशदिनं भजेत् ।

शाल्मली मूल के चूर्ण को मिश्री मिलाकर दूध के साथ पान करने वाला व्यक्ति कामदेव के समान होकर अनेक युवतियों के साथ सहवास करने में समर्थ हो जाता है ।

शाल्मली वृक्ष की जड़, अश्वगंधा, दो प्रकार की सोपाड़ी तथा घी में परिपक्व मालपूआ का इक्कीस दिनों तक, ॥१२-१३॥

नवनागबलः श्रीमान् स्यादम्लक्षारवर्जनात् ।।१४।।
प्रगल्भकामिनीवृन्दमदनिर्मथनक्षमः ।
हरितस्वर्णशाल्मल्याः पूर्ववत्तैलमाहरेत् ।।१५।।
विलिप्तं रजतं तेन साधितं स्वर्णतां व्रजेत् ।

अम्ल तथा क्षार वस्तुओं के प्रयोग से विरत रहते हुए, इस माल का भक्षण करने वाला व्यक्ति सौन्दर्ययुक्त होकर नव हाथियों के बरा शक्तिशाली बन जाता है । इसका प्रयोगकर्ता मदोन्मत्त रमणी-समूहों के म मंथन में सामर्थ्यवान हो जाता है ।

पूर्व कथित रीति से हरे और पीले रंग के शाल्मली (सेमल) का तै निकालकर चाँदी के पत्र पर लेपन कर दें तो वह स्वर्ण के रूप में बदल ज है ॥१४-१५॥

आज्येन पीतं तत्तैलं कारयेद्दिव्यदेहताम् ।।१६।।
तत्तैलं क्षौद्रसंयुक्तं सर्वरोगहरं नृणाम् ।
महोत्पलसुगन्धी स्यात् कनकद्युतिभास्वरः ।।१७।।

उक्त तैल का सेवन घृत के साथ करने पर वह मनुष्य को दिव्य बना देता है ।

उस तैल का मधु के साथ प्रयोग समस्त रोगों का विनाश डालता है तथा शरीर को कमल-पुष्पवत् सुगंधित और स्वर्ण के स चमकीला बना देता है ॥१६-१९॥

तत्पुष्पस्वरसं पीत्वा बालार्ककरसन्निभः ।
अनेककालजीवी स्यादमृतेन यथा सुराः ।।१८।।
आदायारुणशाल्मल्यास्तरुणाङ्घ्रिभवं रसम् ।
सिताक्षौद्रयुतं पीत्वा विन्देद्वज्रनिभं वपुः ।।१९।।

शाल्मलि-पुष्प का निचोड़ा हुआ रस सेवन करने के फलस्वरूप व्यक्ति को अरुणकालीन सूर्य के समान दीप्तिमान तथा दीर्घजीवी बनात जिस प्रकार अमृत-पान से देवगण अमरत्व को प्राप्त कर लेते हैं उसी इसके पुष्प-रस से मानव भी होता है ।

रक्तवर्णीय शाल्मली के मूल का रस लेकर मधु तथा मिश्री के सेवन करने वाला वज्रदेही बनता है ॥१८-१९॥

पूर्ववत्तद्रसं पीत्वा क्षौद्रेण च विभावितम् ।
महायुवत्वं वृद्धोऽपि स्वयं कालेन याति च ।।२०।।

पुष्यर्क्षे मधुना तस्य प्रसूनजनितं रतः ।
आज्येन सेवितं कुर्याद् बलं तद्वत्सरात् क्रमात् ।।२१।।

इसके रस का मधु के साथ पान करने वाला बूढ़ा व्यक्ति भी तरुण जाता है ।

उक्त वृक्ष के पुष्प का चूर्ण पुष्य नक्षत्र में घी तथा मधु के साथ सेवन तो वर्ष क्रमानुसार सतत बलवर्धन होता रहता है ।।२०-२१।।

यः कोऽपि सेवते नित्यं शाल्मलीकल्पमुत्तमम् ।
जरामरणहीनस्य दारिद्र्यं तस्य नश्यति ।।२२।।

इति शाल्मलीकल्पः सम्पूर्णम् ।

जो व्यक्ति नित्यप्रति इस शाल्मलीकल्प का प्रयोग करता रहता है जरा-मरण से विमुक्त होकर अपनी निर्धनता को भी दूर हटाने में समर्थ जाता है ।।२२।।

इस प्रकार शाल्मलीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी ख्या समाप्त हुई ।

अथ काकजङ्घाकल्पः

काकजङ्घां समूलाग्रां पुष्ये सम्यक् समुद्धरेत् ।
छायाशुष्कां ततः कुर्यात् श्लक्ष्णचूर्णं समाचरेत् ।।१।।
सितस्त्रपुङ्खामूलेन सघृतं तद्रजो भजेत् ।
षण्माससेवनात् कर्षैरस्त्रशस्त्रनिवारणम् ।।२।।

काकजंघा की जड़ तथा उसके अगले भाग को पुष्य नक्षत्र में उत्पाटित कर उसे छाया में सुखा डालें । सूख जाने पर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना लें ।

इस चूर्ण का शरपुंखा (सरफोंका) के मूल तथा घृत और मधु के साथ प्रयोग करें ।

एक कर्ष की मात्रा में छह मास तक सेवन करने के उपरान्त अस्त्र-शस्त्र का निवारण होता है अर्थात् शरीर वज्रवत् हो जाता है ॥१-२॥

कुर्याद्वज्रसमं देहं त्रोटनं शस्त्रसंहतेः ।
क्षीरेण पीतं तच्चूर्णं वज्रकायं करोति च ।।३।।
मण्डलं सेवते यस्तु वृद्धोऽपि तरुणायते ।
दध्यादनेन तच्चूर्णं भुक्तं शस्त्रनिवारणम् ।।४।।

इसके प्रयोग से शरीर वज्रवत् सुदृढ़ तथा कठोर हो जाता है । ऐसे शरीर पर शस्त्र-प्रहार करने से वह भग्न हो जाता है तथा किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं पड़ता ।

इसके चूर्ण का सेवन दूध के साथ किये जाने पर मानव वज्रांगी बन जाता है ।

इसके मंडल (सम्पूर्ण घेरा) का सेवन करने वाला वृद्ध पुरुष भी तरुणावस्था को प्राप्त कर लेता है । दही तथा भात के इसका चूर्ण खाने से शस्त्रों का निवारण होता है ॥३-४॥

यावाद्विण्मूत्रयोःस्तम्भो न स्यात्तावच्च भुज्यताम् ।
ककारादिगणांस्त्यक्त्वा तावदन्यांश्च भक्षयेत् ।।५।।
तच्चूर्णमीश्वरीमूलयुतं गोघृतवेष्टितम् ।
पादलेपेन दिव्यः स्याद्दिनेनैकेन मानवः ।।६।।

इस चूर्ण का सेवन तब तक करना चाहिए जब तक मलावरोध या मूत्रावरोध न हो जाय । इसके प्रयोग-काल में ककारादि अक्षरों से प्रारम्भ होने वाली वस्तुओं का त्याग कर अन्य सभी चीजों को खाया जा सकता है ।

ईश्वरीमूल के साथ इसके चूर्ण को गोघृत से चुपड़कर पाँवों में लेप लगाने से एक दिन में ही मनुष्य दिव्यता को प्राप्त कर लेता है ॥५-६॥

सोऽयं वज्रशरीरी स्याद् दृष्टः सिद्ध इवापरः ।
व्रणं हन्तीश्वरीमूलं काकजङ्घारसैः प्लुतम् ॥७॥
पत्राणि काकजङ्घाया गोमूत्रेण विमर्दयेत् ।
उपयुञ्ज्यादास्यरोगे सुगुणस्त्वरितं भवेत् ॥८॥

वही दिव्यता- प्राप्त पुरुष वज्रवत् देहधारी के रूप में अन्यान्य सिद्ध के समान अवलोकित होता है ।

ईश्वरीमूल को काकजंघा के रस में भिंगोकर लगाने से व्रण का रोपण होता है । काकजंघा के पत्तों को गोमूत्र में मसलकर मुख के रोगों में प्रयोग करना लाभदायक सिद्ध होता ॥७-८॥

मूलं च काकजङ्घाया भृङ्गमामलकीरसम् ।
तिलतैलेन विपचेत् तैलं लेपे प्रशस्यते ॥९॥
अभ्यङ्गेन विनश्येच्च खल्वाटपलितादिकम् ।
उत्पाट्य काकजङ्घाया मूलं मेषासृजि क्षिपेत् ॥१०॥

काकजंघा की जड़, भृंगराज (भँगरैया नामक पौधा) तथा आँवला का रस— इन तीनों को एक साथ तिलतैल में पकाकर लगाने से उत्तम फल मिलता है । इसकी मालिश से शिर का गंजापन (शिर पर बालों का न उगना) तथा पलितादिक रोगों का नाश हो जाता है ।

काकजंघा की जड़ को उखाड़कर उसे भेड़ा (मेष) के रक्त में डुबों दें,॥९-१०॥

ततः संमर्द्य तत्तेन रुधिरेण विलेपयेत् ।
सूत्रमेकं च तेनैव कारयेद् बन्धनं करे ॥११॥
ज्वरात् प्रमुच्यते क्षिप्रं पुमान् याति सुखं भृशम् ।
मूलमुष्णोदकैः पीतं स्तम्भयेद्वीर्यमञ्जसा ।
तदेवाज्येन पीतं सन्नाशयेदुदरामयान् ॥१२॥

तदनन्तर उस रक्त के साथ उसे अच्छी प्रकार से मसल डालें । उस रक्त में सूत को भिंगोकर हाथ में बाँध लेने पर ज्वर का निवारण होकर सुख-शांति मिलती है ।

काकजंघा की जड़ को गरम जल के साथ पान करने पर वीर्य का शीघ्र स्खलन नहीं होता । इसके अतिरिक्त उसे घी के अनुपान से लेने पर उदर-विकार का नाश होता है ॥११-१२॥

शीतोदकेन मधुना पीतं छर्दिं निहन्ति च ।
पीतं क्षीरेण रुधिरस्रावं स्तम्भयति ध्रुवम् ।।१३।।
बद्धं कर्णे तु तन्मूलमक्षिरोगानपोहयेत् ।
वशीकरोति सर्वांश्च रोचनातिलकेन च ।।१४।।

इसकी जड़ को शीतल जल और मधु के साथ पीने से वमन (उल्टी का होना रुक जाता है । दूध के साथ पी लेने पर रक्तस्राव बन्द हो जा है। काकजंघा की जड़ को कर्णमूल में बाँधने से यह नेत्ररोगों का विना करता है । गोरोचन के साथ इसे पीसकर मस्तक पर तिलक लगाने से स को वशवर्ती बनाता है ॥१३-१४॥

मधुना हिङ्गुलैश्चापि पीतं प्लीहोदरं हरेत् ।
कटुतैलेन तत्पीतं पित्तं वातं च नाशयेत् ।।१५।।
गुडेनोष्णोदकेनापि श्लेष्माणं विनिवारयेत् ।
तत् पीतं गुडतक्राभ्यां मूत्रकृच्छ्रमपोहयेत् ।।१६।।

इसका पान मधु तथा हिंगुल (शिंगरफ) के साथ करने पर बढ़ी हु प्लीहा को ठीक कर देता है । सरसों के तैल से पान करने पर यह वात-पित्त जनित रोगों का शमन करता है ।

गुड़ तथा गरम जल से पीने पर यह श्लेष्मा (बलगम) को नष्ट करत है। गुड़ तथा मट्ठा के साथ इसके मूल का पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग (थोड़ा थोड़ा करके जलनयुक्त पेशाब बार-बार होना, Micturition) का नाश हो जात है ॥१५-१६॥

महिषीपयसा पीतं क्षयं हन्ति न संशयः ।
मूलं तदेकवर्णाया गोः पीतं पयसा सह ।।१७।।
ऋतुस्नाता हि वन्ध्यापि पुत्रं सूते वधूस्तथा ।
हेम्ना सह धृतं हस्ते शस्त्रस्तम्भं करोति च ।।१८।।

इसका पान भैंस के दूध के साथ करने पर निश्चित रूप से क्षयरो (राजयक्ष्मा) दूर हो जाता है ।

काकजंघा की जड़ को एकवर्णीय गाय के दूध के साथ ऋतुस्नान पश्चात् सेवन करने वाली वन्ध्या नारी भी प्रसव करने में सक्षम हो जाती है इसकी जड़ स्वर्ण के सहित हाथ में बाँधने से शस्त्रावरोध होता है ॥१७-१८

धृतं शिरसि पीडानां शान्ति च कुरुते सदा ।
भल्लातकेन तन्मूलं भुक्तं कुष्ठान् विनाशयेत् ।।१९।।

पत्राणि तस्य पिष्ट्वा च सप्ताहं लेपयेच्छिरः ।
पुनः पुनश्च खल्वाटः केशपूर्णशिरा भवेत् ।।२०।।

इसे शिर पर धारण करने से शिर:पीड़ा का निवारण होता है । भल्लातक (भिलावाँ) के साथ इसके मूल को खाने से कुष्ठरोग का विनाश होता है ।

इसके पत्तों को पानी में पीसकर एक सप्ताह तक बराबर शिर पर लगाने से खल्वाट (शिर का गंजापन अर्थात् शिर पर बाल का न उगना) रोग नष्ट हो जाता है ॥१९-२०॥

निम्न मंत्रोच्चार करते हुए विविध भाँति के कार्य सम्पन्न करने चाहिए—

ॐ काकजङ्घे वरदे वरदे सर्वकार्याणि साधय साधय उच्चाटयोच्चाटय सोदयपुत्रबान्धवम् अमुकं मातर्देवि मम जिह्वाग्रं हुं फट् स्वाहा ।

मंत्र में उल्लिखित 'अमुकं' शब्द के स्थान पर साध्य व्यक्ति का नामोच्चार करें ।

श्मशानाङ्गारेण नीले वस्त्रे बध्वारिगृहे मुक्ता उच्चाटनं भवति । कृत्तिकारोहिण्योरुद्धृतं धनधान्यवृद्धिः । रेवत्या सर्वकार्याणि । पूर्वाभाद्रायां पञ्चाङ्गमस्य मस्तके धार्यम् । अतो व्यवहारे जयः ।।

इति काकजङ्घाकल्पः सम्पूर्णम् ।

किसी नीले कपड़े में श्मशान -भूमि की राख बाँधकर शत्रुगृह में फेंक देने से उसका उच्चाटन होता है । कृत्तिका तथा रोहिणी नक्षत्र में इसके मूल का उत्पाटन करने से धनधान्य की वृद्धि होती है ।

रेवती नक्षत्र में उखाड़ने से हर प्रकार का सिद्धि-लाभ होता है । यदि पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में इसके पंचांग को शिर पर धारण करे तो धारक को व्यवहार में विजय मिलती है ॥२१॥

इस प्रकार काकजंघाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ क्षिप्राकल्पः

क्षिप्रा हि यमुनातीरे पश्चिमे च मरौ भवेत् ।
काण्डस्त्वङ्गुलितुल्यः स्याच् शुष्का वर्षासु सा भवेत् ।।१।।
प्ररोहति पुनः सा तु हेमन्ते च समन्ततः ।
क्षिप्रं तु वर्धते सा तु गौरप्येनां तु भक्षयेत् ।।२।।

यह क्षिप्रा नामक औषधि यमुना नदी के पश्चिमीय तीर पर मरुस्थल प्रदेश में पायी जाती है । इसका तना मोटाई में अंगुली के बराबर होता है तथा यह वर्षाकाल में मुरझाकर सूख जाया करती है ।

हेमन्त ऋतु (शीतकाल) में इसके बढ़ने का क्रम पुनः प्रारम्भ हो जाता है और शीघ्र ही इसकी वृद्धि हो जाती है । इसे गौएँ भी अपने भोज्य पदार्थ के रूप में खाती हैं ॥१-२॥

भग्ना च स्रावयेत् क्षीरं पुष्पं चित्रकसन्निभम् ।
फलमङ्गुलितुल्यं स्याद् विद्धयेयं तां महौषधिम् ।।३।।
ग्रहणेऽपि च रक्षार्थमुच्चरेन्मन्त्रमुत्तमम् ।
मन्त्रेणानेन भूः श्रीश्च प्रसन्ना पार्वती च सा ।।४।।

इसे तोड़ने पर इसमें से दूध का स्राव होता है तथा इसका पुष्प चित्रक (चीता) के सदृश होता है । इसके फल अंगुलियों की तरह के होते हैं । इन्हीं लक्षणों के आधार पर इसकी पहचान होती है ।

इस औषधि को ग्रहण करते समय आत्म-रक्षार्थ इसके मंत्र को उच्चरित करना चाहिए । इसके मंत्रोच्चार द्वारा भूः (भूमि), श्रीः (लक्ष्मी) तथा देवी पार्वती भी प्रसन्न होती है ॥३-४॥

प्रातरुत्पाट्य तन्मूलमक्षतं तु समाहितः ।
आलोडयेन्नागवङ्गौ तारं भवति तत्क्षणात् ।।५।।

ॐ नमः कन्दाय विपरीतिभक्षाय ? अमृतं स्वाहा । इति मन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य मुखे क्षिप्त्वात्मानं खेचरतां नयेत् ।

प्रातःकाल के समय इस औषध के अभग्न मूल (ऐसी जड़ जो किसी स्थान से खंडित न हो) को स्थिरचित्त से उत्पाटित कर लें । इसके साथ नाग (सीसा नामक धातु) तथा वंग (रांगा) को मंथित कर दें तो यह तत्क्षण ही चाँदी के रूप में परिवर्तित हो जाता है ।

इसे निम्नलिखित मंत्र के द्वारा सात बार अभिमंत्रित कर मुख में स्थापित करने से मनुष्य में खेचरत्व (आकाशगामिनी-शक्ति) की उपलब्धि हो जाती है —

''ॐ नमः कन्दाय विपरीतभक्षाय (?) अमृतं स्वाहा''

रसं तस्यास्तु निष्पीड्य संगृह्य च समाहितः ।
घृतं च मधुना त्रीणि समभागानि योजयेत् ।।६।।

इसके रस को सावधानीपूर्वक निचोड़कर इकट्ठा कर लें । तदनन्तर इस रस के बराबर घी और मधु इसमें मिला लें ।।५-६।।

पीते तदा क्षणादेव मृतोऽपि प्रतिबुध्यते ।
दिव्यतेजा महारूपो जीवेदाचन्द्रतारकम् ।।७।।
क्षिप्रारसं तु संगृह्य काकजङ्घारसं तथा ।
शुद्धसूतं चारनाले मर्दयेद्याममात्रकम् ।।८।।
तत्क्षणाज्जायते भस्म शुष्कं वह्नाविवेन्धनम् ।

इति क्षिप्राकल्पःसम्पूर्णम् ।

इसे पान करने के परिणामस्वरूप मृतक मनुष्य उसी समय पुनरुज्जीवित हो जाता है तथा दिव्य तेजोमय होकर आकाश में सूर्य-चन्द्र की अवस्थिति तक भूतल पर विद्यमान रहता है ।

क्षिप्रा बूटी का रस, कांकजंघा का रस, शुद्ध पारद एवं आरनाल को मिलाकर एक प्रहर (तीन घंटा) तक मर्दित करने पर उसी प्रकार पारद का भस्म हो जाता है जिस प्रकार धधकती हुई आग में सूखी लकड़ी डालने से वह जलकर राख हो जाती है ।।७-८।।

इस प्रकार क्षिप्राकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ करञ्जकल्पः

करञ्जद्रुमपञ्चाङ्गं सितया सह सेवितम् ।
वारिणा तज्जटाचूर्णं छायामयनिबर्हणम् ।।१।।
तस्योत्तरगतं मूलं सितादुग्धेन पुष्टिकृत् ।
सितेतरतलोद्भूतं तन्मूलं पयसा सह ।।२।।
सेवितं च निहन्त्याशु पाण्डुरोगं सुदुस्सहम् ।

करंज वृक्ष के पंचांग (पत्र, पुष्प, फल, मूल एवं छाल) का महीन चूर्ण मिश्री के साथ तथा उसकी शिखा का चूर्ण जल के साथ प्रयोग करने से छायामय रोग (शरीर की त्वचा पर नीले रंग के धब्बे पड़ना, व्यंग रोग) का विनाश सुनिश्चित हो जाता है ।

उत्तर दिशा की ओर फैली हुई शाखा वाले करंज की जड़ को मिश्री तथा दूध के साथ सेवन करना बलवर्धक होता है । श्वेत वर्ण से भिन्न अन्य किसी वर्ण के करंजमूल को दूध के अनुपान से सेवन करने पर वह महाभीषण पांडुरोग (कामला या पीलिया रोग, Jaundice) को भी नष्ट कर देता है ॥१-२॥

गवां तक्रेण तन्मूलं चूर्णमाज्येन सेवितम् ।।३।।
मण्डलप्रमुखान् कुष्ठान् तथा दुष्टान् व्रणाञ्जयेत् ।
तैलेन तस्य पञ्चाङ्गचूर्णं सम्यग्व्रणापहम् ।।४।।

करंजमूल को गाय के मट्ठा तथा उसके चूर्ण को घी के साथ सेवन करने से मण्डल कुष्ठ (चकत्तेदार कुष्ठ) तथा दुष्ट व्रण (ऐसा व्रण जिसके घाव का शीघ्र भराव न हो) भी विनष्ट हो जाया करते हैं ।

इसके पंचांग का चूर्ण तैल में मिलाकर लेप लगाने से कैसा भी घाव क्यों न हो शीघ्र ही भर जाते हैं ॥३-४॥

क्षीरेण पीतं तच्चूर्णं विरेकजनकं स्मृतम् ।
शीताम्बुस्पर्शनात्तस्य वेगः शीघ्रं निरुध्यते ।।५।।
घृतेन पाचितो हन्ति मारुतस्य विजृम्भणम् ।
तैलेन पाचितो वातं कोमलं विनिवारयेत् ।
अपोहयेदसौ सन्धिवातं सम्यङ् न संशयः ।।६।।

इति करञ्जकल्पः सम्पूर्णम् ।

करंजचूर्ण दूध के साथ खाने से विरेचन (जुलाब) का कार्य करता है। शीतल जल के स्पर्शमात्र से उसके प्रवाह का निरोध हो जाता है ।

घी में पकाया हुआ करंज वायु के विस्तार का नाश करता है। तैल में पकाने पर वह वातनाशक हो जाता है तथा संधिवात (Arthritis) को शीघ्र ही दूर करता है ॥५-६॥

इस प्रकार करञ्जकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

अथ निर्गुण्डीकल्पः

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि चौषधिं परमाद्भुतम् ।
धनधान्यकरीं देवि आयुरारोग्यवर्धनीम् ।।१।।
शान्तिपुष्टिकरीं देवि साक्षाद्देवस्वरूपिणी ।
निर्गुण्डीति समाख्याता सर्वलोकसुखावहा ।।२।।

देवी पार्वती से शिवजी ने कहा— हे देवि! अब मैं एक ऐसी परम अद्भुत औषधि का कथन कर रहा हूँ जो धन-धान्य, आयुष्य तथा आरोग्य-वर्धिनी है ।

हे देवि! यह औषधि शांतिदायिनी तथा पुष्टिकारिणी साक्षात् देवस्वरूपा है । निर्गुण्डी नाम से विख्यात यह समस्त जीवधारियों के लिए सुख-प्रदायिनी होती है ॥१-२॥

तस्याहं सम्प्रवक्ष्यामि प्रयोगं शृणु सुन्दरि ! ।
निर्गुण्डीमूलमुद्धृत्य पुष्यार्के शोभने दिने ।।३।।
निर्गुण्डीमूलचूर्णं तु गवां सर्पिः पलाष्टकम् ।
घृतं चैव तथा क्षौद्रं षोडशं क्षीरकं तथा ।।४।।
स्निग्धभाण्डे समालोड्य धान्यराशौ निधापयेत् ।

शिवजी बोले - हे सुन्दरि! इस निर्गुण्डीकल्प के विधान का मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ, इसे तुम श्रवण करो । रविवार के दिन पड़ने वाले पुष्यनक्षत्र में इसे जड़सहित उखाड़कर ले आवें ।

इस निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण तथा गोघृत आठ पल, मधु और दूध सोलह पल को एक साथ किसी चिकने पात्र में भरकर अन्न की ढेरी में अच्छी प्रकार दबाकर स्थापित कर दें ॥३-४॥

पूर्णे मासे तदुद्धृत्य सुदिने पुष्यसंयुते ।।५।।
बिडालपदमात्रं तु मासमात्रं प्रदापयेत् ।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।।६।।

एक मास के अनन्तर पुनः पुष्यनक्षत्र आने पर उसे निकालकर एक कर्ष की मात्रा में एक महीने तक इसका सेवन करे तो वलीपलित रोग का नाश होकर मनुष्य तीन सौ वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त कर लेता है ॥५-६॥

निर्गुण्डीमूलमादाय योऽजामूत्रेण संपिबेत् ।
नखदन्तं च केशाश्च सप्तरात्रात् पतन्ति हि ।।७।।

मासमात्रप्रयोगेण नाग्निना दह्यते नरः ।
तस्य मूत्रपुरीषेण शुल्बं भवति काञ्चनम् ।।८।।

निर्गुण्डीमूल को बकरे के मूत्र के साथ पान करने वाले व्यक्ति के नाखून, दाँत तथा केश एक सप्ताह में झड़ जाते हैं ।

एक महीने तक इसका सेवन करने वाला मनुष्य अग्नि से दग्ध नहीं होता तथा उसके मल-मूत्र से ताँबा भी स्वर्ण बन जाता है ।।७-८।।

निर्गुण्डीमूलमादाय तिलतैलेन भक्षयेत् ।
अष्टादशविधान् कुष्ठान् नाशयेदेकमासतः ।।९।।
निर्गुण्डीमूलमादाय घृतेन सह यः पिबेत् ।
मासमात्रप्रयोगेण स स्यादाकाशगो ध्रुवम् ।।१०।।

इसकी जड़ का तिलतैल के साथ सेवन करने से एक महीने में ही अठारह प्रकार के कोढ़ रोग नष्ट हो जाते हैं ।

निर्गुण्डी के मूल का सेवन एक महीने तक घी के साथ करने पर आकाशगामिनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है ।।९-१०।।

पुष्यर्क्षे ग्राहयेत् प्रातर्निर्गुण्डीमूलजां त्वचम् ।
शुष्कां कृत्वा विचूर्ण्यथि कर्षं कर्षं भजेत् सदा ।।११।।
अजामूत्रप्रलेपेन षण्मासादमरो भवेत् ।
वर्षमात्रप्रयोगेण शिवतुल्यो भवेन्नरः ।।१२।।

प्रात:काल की वेला में निर्गुण्डी की जड़ का छिलका पुष्य नक्षत्र में निकाल ले और सुखाकर चूर्णित कर लें । नित्यप्रति एक कर्ष के परिमाण में इस चूर्ण का सेवन करना चाहिए ।

पुन: बकरे के मूत्र का लेपन करने से छह महीने में ही वह अमरत्व प्राप्त कर लेता है तथा निरन्तर एक वर्ष पर्यन्त सेवन करने वाला शिवतुल्य हो जाता है ।।११-१२।।

अर्धवर्षमिदं चाज्यैर्लिहेत् स्यात् पूर्ववत्फलम् ।
तच्चूर्णं त्रिफला मुण्डी भृङ्गी निम्बगुडूचिके ।।१३।।
वचा इमाः समा कृत्वा मध्वाज्याभ्यां लिहेत् पलम् ।
गुडेन तु विपाच्यैतत् पीतं सम्यग्विरेककृत् ।।१४।।

इसे छह महीने तक घी के साथ चाटने से भी पूर्वोक्त फल मिलता है । निर्गुण्डी का चूर्ण, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), मुण्डी (गोरखमुंडी), भृंगी (भँगरैया), नीम, गुडूची (गुरुच) तथ वच—इन सब वस्तुओं को समान

भाग में चूर्ण बना लें। पुनः घी तथा मधु के सहित इस चूर्ण को एक पल की मात्रा में चाटना चाहिए।

इसे गुड़ के साथ पकाकर क्वाथ के रूप में पान करने से कोष्ठबद्धता नहीं होती है ॥१३-१४॥

निर्यान्ति कृमयस्तस्य मुखादपि गुदादपि ।
राजयक्ष्मादिरोगांश्च सप्ताहेन विनाशयेत् ॥१५॥
मासत्रये जरां हन्ति जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।
निर्गुण्डीमूलमादाय छायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥१६॥

इसे एक सप्ताह तक निरन्तर प्रयोग करने पर मुखद्वार तथा मलद्वार से कृमि (केंचुआ, Earth-worm) बाहर निकल आते हैं और राजयक्ष्मा से पीड़ित व्यक्ति भला-चंगा हो जाता है।

तीन महीने के प्रयोग से बुढ़ापा दूर हो जाती है तथा वह तीन सौ वर्षों की लम्बी आयु पा लेता है। इसकी जड़ को लेकर छाया में शुष्कीकरण कर लें। तदुपरान्त इसका चूर्ण तैयार करें ॥१५-१६॥

सप्ताहं गोजले भुक्तं हन्ति सर्वान् गदानपि ।
अष्टादशपलं चैतच्चूर्णं द्वादश सर्पिषः ॥१७॥
मधुनः षोडशपलमेकीकृत्य विधानतः ।
संस्थापयेद्धान्यराशौ मासादूर्ध्वं समुद्धरेत् ॥१८॥

गोमूत्र के साथ इसे एक सप्ताह तक खाने से सम्पूर्ण रोगों का शमन होता है।

निर्गुण्डी चूर्ण १८ पल, घी १२ पल तथा मधु १६ पल— इन सबको विधिवत् एकत्रित कर धान्यराशि-समूह में ढँककर रख दें। एक मास से अधिक समय बीत जाने पर इसे अन्नराशि में से बाहर निकाल लें ॥१७-१८॥

समभ्यर्च्य गुरुं देवं पूजयेच्च विधानतः ।
ब्राह्मणांश्च कुमारीश्च भोजयेत् पण्डितानपि ॥१९॥
गृहीत्वा विजने देशे शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
बिडालपदमात्रं तु भोजयेन्नियतो नरः ॥२०॥

विधि-विधानपूर्वक अपने गुरु तथा देवताओं के पूजनोपरान्त विप्रों, कुमारी कन्याओं तथा पंडितजनों को भोजन करायें।

तत्पश्चात् उसे ग्रहण कर निर्जन स्थान में शुचितापूर्वक एकाग्रचित्त हो नित्यप्रति नियमपूर्वक एक कर्ष की मात्रा में मास-पर्यन्त सेवन करना चाहिए ॥१९-२०॥

अहन्यहनि भोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।
ततो मासे व्यतिक्रान्ते सोऽयं भवति सुन्दरः ।।२१।।
पीवरस्कन्धगात्रश्च भवेत् कुलिशसन्निभः ।
वलीपलितनिर्मुक्तो दीर्घजीवी भवेन्नरः ।।२२।।

एक मास में औषधसेवी स्वरूपवान बन जाता है । उसके कंधे मांसलयुक्त पुष्ट होकर शरीर वज्रवत् बन जाता है तथा वह वलीपलित रोग से मुक्त होकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर लेता है ॥२१-२२॥

भवत्येवाक्षयं रेतो रन्तुं स्यात् स्त्रीशतं क्षमः ।
प्रकामं भोजनं तस्य भवेद् भोक्तव्यमन्वहम् ।।२३।।
विकारा मनसः शाम्यन्त्यक्षयः स च वर्धते ।
यः प्रस्थचूर्णं निर्गुण्ड्या गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।।२४।।

ऐसा व्यक्ति अशेष वीर्यवान होकर सैकड़ों नारियों के साथ रति-क्रीड़ा में समर्थ बन जाता है । उसे प्रतिदिन अधिक मात्रा में आहार भी लेने चाहिए ।

उसके समस्त मानसिक विकार शांत हो जाते तथा वह निर्बाध गति से वृद्धि की ओर बराबर अग्रसर होता जाता है । इस निर्गुण्डी चूर्ण को एक प्रस्थ (एक प्राचीन तौल) की मात्रा में गोमूत्र के साथ जो पान करता है,॥२३-२४॥

दशरात्रप्रयोगेण कुष्ठान्यष्टादशापि च ।
नाशयेच्च महादेवि! वायुर्मेघमिवाम्बरम् ।।२५।।
अजामूत्रेण निर्गुण्ड्याश्चूर्णमेवं च यो भजेत् ।
नखाः केशाश्च दन्ताश्च सप्ताहान्निपतन्ति हि ।।२६।।

हे महादेवि! वह दश दिनों तक सेवनोपरान्त अठारह प्रकार के कुष्ठ रोग को मिटा देने में उसी प्रकार सामर्थ्यवान हो जाता है जिस प्रकार मेघ-समूहों को पवन उड़ाकर तितर-बितर कर देता है ।

इस निर्गुण्डीचूर्ण को बकरे के मूत्र के साथ सेवन करने वाले के नाखून, दाँत तथा शिर के बाल एक सप्ताह में ही झड़ जाते हैं ॥२५-२६॥

द्विसप्ताहप्रयोगेण जायन्ते ते पुनर्नवाः ।
न चाग्निना दह्यतेऽसौ न जले म्रियतेऽपि च ।।२७।।
तद्देहस्पर्शनाल्लोहः स्वर्णं भवति तत्क्षणात् ।
चतुस्सप्ताहयोगेन सिद्धिराकाशगामिनी ।।२८।।

दो सप्ताह तक प्रयोग करने के पश्चात् वह पुनः नूतनता को प्रा कर लेता है । वह आग में न तो जलता है और न ही जल में डूब मरता है ।

उसके शरीर का स्पर्श होते ही लोहा भी स्वर्ण में परिणत हो जा है। इसी प्रकार चार मास तक प्रयोग कर लेने पर उसमें आकाशचारी श आ जाती है ॥२७-२८॥

निर्गुण्डीचूर्णमादाय घृतेन सह संपिबेत् ।
कृष्णवर्णो नरो यस्तु स्वर्णतेजाः स जायते ॥२९॥
निर्गुण्डीचूर्णमादाय पिबेद् गोपयसा पुमान् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण स्यात् किन्नरसमध्वनिः ॥३०॥

इस निर्गुण्डी चूर्ण का घृत के साथ सेवन करने पर काले रंग व्यक्ति भी स्वर्ण के सदृश चमकने लग जाता है । इसके चूर्ण को गोदुग्ध सहित पान करने वाले व्यक्ति के गले का स्वर अत्यन्त सुरीला हो जाता तथा वह देवगायक किन्नरों के समान बन जाता है ॥२९-३०॥

निर्गुण्डीचूर्णमादाय पिबेच्छिशिरवारिणा ।
सप्तरात्रप्रयोगेण वलवीर्यं प्रवर्धते ॥३१॥
चतुस्सप्ताहयोगेन वर्धते तेज उत्तमम् ।
निर्गुण्डीमूलमुद्धृत्य गृहे संस्थापयेद् बुधः ॥३२॥
नश्यन्ति सर्वविघ्नाश्च गृहे नागाश्च सर्वदा ।

निर्गुण्डी चूर्ण को सात दिनों तक ठंढे जल के साथ सेवन करने बल-वीर्य की वृद्धि होती है । चार मास के प्रयोग से अतितेजस्विता जाती है ।

बुद्धिमान व्यक्ति को निर्गुण्डी की जड़ उखाड़कर अपने आवास रख लेने चाहिए । इसके रखने से सभी विघ्नों का विनाश होता तथा भी उस घर में नहीं टिकता ॥३१-३२॥

अथ निर्गुण्डी भक्षणमन्त्र— **"ॐ ह्रीं हुं फट् स्वाहा" अनेनाष्टोत्तर जपेत् ।**

निर्गुण्डी भक्षण करने का मन्त्र— उपर्युक्त मन्त्र का एक सौ बार (१माला) जप कर लें ।

अभिमन्त्रण-मन्त्र— **" ॐ नमो नानारूपाय शान्तपापाय कुं स्वाहा ।" इति मन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य निर्गुण्डी भक्षयेत् ।**

निर्गुण्डी भक्षण करने से पूर्व उक्त मंत्र द्वारा उसको सात बार अभिमंत्रित कर लेने के पश्चात् ही भक्षण करें ।

षाष्टिकं च सगोक्षीरं मुष्टिकोदनभक्षणम् ।
भूगृहान्ते स्थितिर्मासपर्यन्तं भक्षयंस्त्विदम् ।।३३।।

इति निर्गुण्डीकल्पः सम्पूर्णम् ।

इसके भक्षण-काल में एक महीने तक साँठी के चावल का भात बनाकर एक मुट्ठी परिमाण में गाय के दूध के साथ भक्षण करते हुए भूमिगत होकर निवास करना चाहिए ।।३३।।

इस प्रकार निर्गुण्डीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ इन्द्रवारुणीकल्पः

इन्द्रवारुणिकामूलमहोरात्रमुपोषितः ।
पुष्यर्क्षे चोद्धरेत्तच्च संयोज्य कटुभिस्त्रिभिः ।।१।।
अजामूत्रेण पिष्ट्वा च वटीं कुर्याद् द्विगुञ्जिकाम् ।
छायायां शोषयेत् सम्यक् ततः खादेद् घृतेन च ।।२।।

व्रतानुष्ठानपूर्वक पुष्य नक्षत्र में इन्द्रवारुणी की जड़ का उत्पाद करें। इसके साथ त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) मिलाकर उसे बकरे मूत्र के साथ पीस डालें। पुनः इसकी दो गुंजा (घुँघची) के बराबर (प्राचीन काल में २ घुँघची को १ रत्ती माना जाता था) की वटी बना लें। पुनः उ छाया में सुखा कर घृत के साथ खायें ॥१-२॥

चन्दनेन च रक्तेन विमर्द्य विलिहेच्चनाम् ।
यं यं स्पृशति सर्वोऽपि वश्योऽस्य स भवेन्नरः ।।३।।
गुटिका सा मुखे क्षिप्ता शुक्रं स्तम्भयति ध्रुवम् ।
गुटिकां चणकपत्रस्य रसेन परिमर्दयेत् ।।४।।

इसे रक्तचन्दन के साथ मसलकर चाटने पर जिसे भी स्पर्श कि जाय वही अपने वश में आ जाता है। इसकी गोली बनाकर मुख में धार करने से निश्चय ही वीर्य-स्खलन में रुकावट होती है। इस वटी को चने पत्तियों क रस में मर्दन करें ॥३-४॥

श्लक्ष्णेन तेन ताम्रस्य पत्राणि च विलेपयेत् ।
ततो दद्याद्गजपुटं भस्मीभवति तद् ध्रुवम् ।।५।।
ताम्रं तद्भस्मसंयोगात् स्वर्णतां व्रजति क्षणात् ।
इन्द्रवारुणिकामूलं पुष्यर्क्षे च समुद्धरेत् ।।६।।

उसके बारीक हो जाने पर उसे ताम्रपत्र पर लेपन कर गजपुट (भ निर्माण का चूल्हा विशेष) में आँच देने से निःसन्देह ही उसका भस्म जाता है। उस ताम्र भस्म के द्वारा ताँबा शीघ्र ही स्वर्ण के रूप में परिवर्ति हो जाता है। इसकी जड़ को पुष्य नक्षत्र में उखाड़कर, ॥५-६॥

कालत्रये गवां क्षीरैः पिष्ट्वा तद्गोलकं कृतम् ।
छायाशुष्कं च भुक्त्वा तत् पुष्टिमायाति पूरुषः ।।७।।
इन्द्रवारुणिकामूलं त्र्यूषणं च समं हरेत् ।
पिष्ट्वा च दुग्धेन गवां पूर्ववत्कारयेद्वटीम् ।।८।।

उसे गाय के दूध में पीसकर गोलाकार बना लें। पुनः उसे छाया में सुखाकर त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न, अपराह्न) भक्षण करें तो पुष्टि प्रदान करता है ।

इन्द्रवारुणी की जड़ तथा त्र्यूषण (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) को समान परिमाण में लेकर गोदुग्ध में पीस कर उसकी गुटिका बना लें ॥७-८॥

वक्त्रे धृतं बुद्धिबलं वीर्यस्तम्भं करोति च ।
इन्द्रवारुणिकायास्तु फलं संगृह्य तत्र च ॥९॥
मरिचानि विभिद्यान्तर्निक्षपेतच्च लेपयेत् ।
कल्केनास्यैव मूलस्य शोषयेदातये ततः ॥१०॥
उष्णोदकेन तद् भुक्त्वा सम्यग्रेचनमृच्छति ।

इसे मुख में धारण करने के परिणामस्वरूप बल-बुद्धि का विकास होता तथा साथ ही वीर्य का भी स्तम्भन होता है। इन्द्रवारुणी के फल को लेकर मसल डालें। अब उसमें मरिच भरकर ऊपर से इसकी जड़ को पीसकर लेपन कर दें। तदनन्तर छाया में उसका विशुष्कीकरण कर उष्ण जल के साथ प्रयोग करने पर वह रेचक गुणवाला (दस्तावर) हो जाता है ॥९-१०॥

इति इन्द्रवारुणीकल्पः सम्पूर्णम् ।

प्रयोग-मन्त्रः–

''आं नमः सर्वार्थसाधकाय स्वाहा । ॐ आं नमः सर्वसत्त्वा-सामर्थसाधिनि हुं फट् स्वाहा ।''

इसे प्रयोग करने से पूर्व ऊपर लिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ।

इस प्रकार इन्द्रवारुणीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

❋

अथ भृङ्गराजकल्पः

काले शरदि संग्राह्यं भृङ्गराजं समूलकम् ।
आतपे शोषयित्वा च सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।।१।।
आरनाले समालोड्य सेवयेद्दिवसे शुभे ।
विडालपदमात्रं तु भक्षयेदखिलं हितम् ।।२।।

शरद् ऋतु में भृंगराज (भंगरैया) नामक पौधे को जड़सहित उखाड़कर धूप में सुखा लें । सूख जाने पर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना लें ।

पुनः उसे आरनाल (कांजी) में मथकर शुभ मुहूर्त में एक कर्ष की मात्रा में जनकल्याण की आकांक्षा से भक्षण करें ।।१-२।।

मासमात्रप्रयोगेण विनश्यन्त्यखिलामयाः ।
मासद्वयप्रयोगेण बलवान् रोगवर्जितः ।।३।।
भृङ्गराजरसे चूर्णं त्रिफलाया विनिक्षिपेत् ।
पक्षत्रयप्रयोगेण पलितैरपि मुच्यते ।।४।।

इसका प्रयोग निरन्तर एक महीने तक करने से सम्पूर्ण रोगों का विनाश हो जाता है । दो महीने के सेवन से मानव नीरोग तथ बलशाली हो जाता है । भँगरैया के रस में त्रिफला का चूर्ण मिलाकर डेढ़ मास (४५ दिन) तक प्रयोग करने से केश की श्वेतता (पलित रोग) दूर हो जाती और बाल काले हो जाते हैं ।।३-४।।

काकमाचीरसं भृङ्गरसेन सह संपिबेत् ।
द्वादशाहाद्भवेज्जन्तुर्दृढदेहो जितेन्द्रियः ।।५।।

इति भृङ्गराजकल्पः सम्पूर्णम् ।

भृंगराज रस के साथ काकमाची (मकोय) के पौधे का रस मिलाकर बारह दिनों तक सेवन करने के पश्चात् मनुष्य दृढ़देही तथा विजितेन्द्रिय बन जाता है ।।५।।

इस प्रकार भृङ्गराजकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ त्रिफलाकल्पः

त्रिनिष्कमात्रा ह्यभया षण्णिष्कं तु बिभीतकम् ।
धात्री द्वादशनिष्का स्यात् त्रिफला सूक्ष्मचूर्णिता ।।१।।
योजयेत् खदिरस्यापि विडङ्गस्य च चूर्णकम् ।
सर्वं विमर्दयेत् खल्वे भृङ्गराजभवाम्बुभिः ।।२।।
तद्रसे सप्तधा भाव्यं पुनश्च......... चूर्णकम् ।

इसके लिए हरीतकी (हरड़) तीन निष्क, बिभीतक (बहेड़ा) छह निष्क तथा धात्री (आँवला) बारह निष्क लेकर महीन चूर्ण बना डालें ।

पुनः इसमें खदिर (खैर) तथा बिडंग (भाभीरंग) का चूर्ण मिलाकर भृंगराज के स्वरस को खरल में सात बार भावित कर मसल डालें । तत्पश्चात् उसे चूर्ण के रूप में बना लें ॥१-२॥

नियमेनास्य योगस्य मासमात्रनिषेवणात् ।।३।।
वलीपलितनिर्मुक्तो षण्मासाद् दिव्यदेहवान् ।
इत्थं संवत्सराभ्यासाद्दीर्घं विन्दति जीवितम् ।।४।।

इति त्रिफलाकल्पः सम्पूर्णम् ।

इस चूर्ण का एक मास तक नियमपूर्वक सेवन करने वाला प्राणी वलीपलित रोग से विमुक्त हो जाता है । लगातार छः मास मास तक सेवन करने से दिव्यदेही बन जाता है । इसी भाँति वर्ष-पर्यन्त सेवन करने से मानव दीर्घायु बन जाता है ॥३-४॥

इस प्रकार त्रिफलाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ उदककल्पः

न संपक्तिक्रियायोगो भेषजेषु च विद्यते ।
सर्वरोगविनाशाय निशान्ते तु पिबेज्जलम् ।।१।।
अम्भसः प्रसृतीरष्टौ रवावनुदिते पिबेत् ।
वातपित्तभवान् रोगान् हन्ति कुर्यात् सुखं स्थिरम् ।।२।।

औषधियों में परिपाक-क्रिया का संमिश्रण नहीं होता, परन्तु समस्त रोगों के नाशार्थ प्रात:काल उठकर जल पीना चाहिए । सूर्योदय से पूर्व आठ अंजलि जल पी लेने वाला व्यक्ति सभी रोगों से विरहित होकर सुखी जीवन व्यतीत करता है ।।१-२।।

प्रसृतियुगलमात्रं प्रातरुत्थाय नित्यं,
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि ।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा ताक्ष्यर्तुल्यो
वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ।।३।।
निशादौ च विषं वारि निशामध्ये पयः स्मृतम् ।
निशान्ते च पिबेद्वारि मातुः क्षीरमिवोत्तमम् ।।४।।

उष:काल में दो अंजलि जल नासारन्ध्र से पान करने वाला मनुष्य प्रज्ञावान, गरुड़ पक्षी के समान दूरदर्शी तथा पलितादिक समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है ।

रात्रि के प्रथम प्रहर में जल का पान करना विषतुल्य, मध्य रात्रि में गोदुग्ध तथा प्रात:काल सूरज उगने से पूर्व जल पीना गोदुग्ध के समान गुणकारी माना जाता है ।।३-४।।

पिबेद्घटसहस्राणि यावन्नोदेति भास्करः ।
अस्तं गते दिवानाथे बिन्दुरेकी घटायते ।।५।।

इति उदककल्पः सम्पूर्णम् ।

सूर्योदय होने से पहले हजार घड़ों का जल पीने में भी कोई दोष नहीं है, परन्तु सूर्योदय की वेला में एक बूँद भी जल पी लेने पर वह सहस्र घड़ों के समान हो जाता है ।।५।।

इस प्रकार उदककल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

❋

अथ मुसलीकल्पः

नामान्यस्य प्रवक्ष्यामि यतो जानन्ति साधकाः ।
सुवर्णपुष्पी गौरी च मुसली युगपत्रिका ॥१॥
नारायणी क्षीरवहा नामभिः सा शुभा मता ।
ततः कर्माणि कुर्वीत विज्ञायौषधिमुत्तमाम् ॥२॥

आयुर्वेद ग्रन्थों में इसे अनेक नामों से संबोधित किया गया है, जैसे— सुवर्णपुष्पी, गौरी, मुसली, युगपत्रिका, नारायणी तथा क्षीरवहा ।

इस श्रेष्ठ औषध को इसके साधक-गण भली प्रकार से जानते हैं। परन्तु फिर भी इसकी गुणवत्ता को समझकर ही प्रयोगारम्भ करना उचित है ॥१-२॥

मुसल्याः पुष्पमाहृत्य सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ।
मधुना सह भुक्तं तत् करोत्यग्नेर्बलं परम् ॥३॥
आज्येन तत्प्रयुक्तं सद् गुल्मरोगं विनाशयेत् ।
उष्णोदकेन युक्तं तु तदजीर्णमपोहयेत् ॥४॥

मुसली-पुष्प को लेकर चूर्ण बना लें । तदुपरान्त उस चूर्ण को मधु मिलाकर खाने से जठराग्नि प्रज्वलित होती तथा क्षुधावर्धित होती है । इसका प्रयोग घी के साथ करने पर गुल्म रोग का नाश होता है । इसी को गरम जल से सेवन करने पर अजीर्ण (Dyspepsia) रोग दूर हो जाता है ॥३-४॥

विसूचिकां विरेकानप्यधिकान् विनिवारयेत् ।
गोधूमचूर्णभागौ द्वौ मूसलीचूर्णमेककम् ॥५॥
घृताक्तं मधुनाक्तं वा द्वितयं तद्भजेन्नरः ।
सप्तरात्रप्रयोगेण सर्वे यान्त्यामयाः क्षयम् ॥६॥

इसके सेवन से विषूचिका (हैजा, कालरा) का विनाश होता तथा विरेचन का वेग भी मन्द पड़ जाता है ।

गेहूँ का चूर्ण दो भाग तथा मुसली का चूर्ण एक भाग मिलाकर केवल घृत या मधु-घृत के साथ प्रयोग करने पर एक सप्ताह के अन्दर सभी प्रकार के रोग दूर भाग जाते हैं ॥५-६॥

वृश्चिकेन च संदष्टे चूर्णमस्योपयोजयेत् ।
तण्डुलस्याम्भसा शीघ्रं विषं तस्य विनश्यति ॥७॥
मनश्शिलाभस्मना च कासश्वासावपोहयेत् ।
विनाशयेद्गण्डमालां घृतेन पयसापि वा ॥८॥

इसका चूर्ण चावल के धोवन के साथ खाने से बिच्छू के डंक मारने का विष तत्काल ही समाप्त हो जाता है।

मन:शिला (मैनसिल) भस्म के साथ इसके चूर्ण का सेवन करने से कास (खाँसी) तथा श्वास रोग (दमा) का दमन होता है। इसे घी या दूध के साथ प्रयोग करने पर गण्डमाला (घेघा) रोग नष्ट हो जाता है ॥७-८॥

शमयेत् कुपितं पित्तं त्रिफलाचूर्णकेन च ।
मध्वाज्याभ्यां च तच्चूर्णं पलद्वयमितं भजेत् ॥९॥
अक्षय्यमस्य सततं रेतः संजायते ध्रुवम् ।
आर्द्रकस्वरसैर्नश्येत् कुष्ठ बाधिर्यमेव च ॥१०॥

इसे त्रिफलाचूर्ण के साथ लेने से पित्त-प्रकोप का शमन होता है। इसके चूर्ण को दो पल की मात्रा में लेकर घृत-मधु के साथ खाने से मनुष्य नि:सन्देह रूप से अमोघ वीर्यवान बनता है।

आर्द्रक (अदरक) को पीसकर उसका रस निकाल कर मुसली-चूर्ण के साथ सेवन करने से कुष्ठ एवं बधिरता का निवारण होता है ॥९-१०॥

जरामृती जयेत्तच्च केसरस्य रसेन हि ।
अपस्मारं नाशयति जम्बूफलरसैरपि ॥११॥
दुग्धेन भस्मकं तृष्णां काञ्जिकेन निवारयेत् ।
भृङ्गराजरसैः सर्वानामयान् शमयेदिदम् ॥१२॥

इसका चूर्ण केसर के रस से लेने पर बुढ़ापा तथा मृत्यु पर नियंत्रण होता है।

इसके चूर्ण का सेवन जम्बूफल (जामुन का फल) के साथ करने के परिणामस्वरूप अपस्मार (मृगीरोग, Epilepsy) रोग नष्ट हो जाता है।

दूध में भिंगोकर बनाये गये इसके भस्म को कांजी के साथ लेने पर तृषा (पिपासा) की शांति हो जाती है। भृंगराज के रस से इसका प्रयोग किये जाने पर यह समस्त रोगों का शमन कर देती है ॥११-१२॥

क्षयमौदुम्बररसैः क्षपयेत् पलितं नृणाम् ।
बाकुचिस्वरसेनैतद् बन्ध्यात्वं च विनाशयेत् ॥१३॥
गोमूत्रेणोपयुक्तं तत् सततं शमयेज्ज्वरम् ।
जम्बीरस्वरसेनैषा मुसली कामलापहा ॥१४॥

उदुम्बर (गूलर) के रस से सेवन करने पर पलित रोग (केशों की सफेदी) का निवारण होता है।

बाकुची के स्वरस से प्रयोग किये जाने पर यह बाँझपन के दोष को मिटा देता है। गोमूत्र के साथ लेने से सतत ज्वर (निरन्तर बना रहने वाला ज्वर) में इससे लाभ होता है। नीबू के रस से सेवन करने पर यह कामला रोग में गुणकारी होता है ॥१३-१४॥

तद्रजः काञ्जिकैः पीतं सद्यः कुक्षिरुजापहम् ।
कदलीवारिणा हन्याज्ज्वरमेषा तृतीयकम् ॥१५॥
अपामार्गरसेनापि निर्हरिद्वातजान् गदान् ।
नारिकेलाम्बुना युक्तं शिरोरोगान् निवारयेत् ॥१६॥

मुसली का चूर्ण कांजी के साथ पान करने से औदरिक रोग नष्ट हो जाते हैं। केले के रस से ग्रहण करने पर तृतीयक ज्वर (तिजारी बुखार) उतर जाता है।

अपामार्ग (चिचिड़ा) के रस से सेवन करे तो यह वातोत्पन्न सभी रोगों को दूर कर देता है। नारियल के जल से इसे पान करने पर शिर के रोग नहीं रह जाते ॥१५-१६।

तिलतैलेन तच्चूर्णं हन्याच्छ्लेष्मभवान् गदान् ।
मदनस्य रसैः पीतं पाण्डुं जयति दुस्सहम् ॥१७॥
सूरणेनोपयुक्तं तद् गुदामयमपोहयेत् ।
आर्द्रकस्य रसैः पीतं तच्चूर्णं शूलवेगनुत् ॥१८॥

मुसली-चूर्ण को तिल-तैल के साथ भक्षण करने पर कफजनित रोगों का निवारण होता है। मदन (मैनफल) के रस द्वारा इसके पान से दुर्निवार पांडुरोग भी नष्ट हो जाता है।

इस चूर्ण का प्रयोग सूरण (जिमीकंद) के साथ किये जाने पर मलद्वार सम्बन्धी रोगों का नाश होता है। अदरक के रस के साथ सेवन करने से शूलरोग का वेग घट जाता है ॥१७-१८॥

कूष्माण्डफलसारेण जलोदरगदं जयेत् ।
तच्चूर्णं सैन्धवोपेतं दुष्टव्रणविशोषणम् ॥१९॥
जीर्णज्वरभवान् रोगान् पिप्पल्या सहितं हरेत् ।
लक्ष्मणामूलमुसलीकदलीकन्दजान् रसान् ॥२०॥

इसका सेवन कूष्माण्ड-फल (सफेद कुम्हड़ा, पेठा) के गूदा के साथ करने पर जलोदर रोग नष्ट होता है। मुसली-चूर्ण को सेंधा नमक में मिलाकर खाने से दुष्ट व्रण (जल्दी न सूखने वाला घाव) का शीघ्र ही पूरण होता है।

पिप्पली (छोटी पीपर) के साथ इसका चूर्ण खाने से पुराने बुखार (Chronic fever) से सम्बन्धित सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ।

लक्ष्मणा बूटी की जड़, मुसली तथा केले के कंद का रस नित्यप्रति सेवन करने से वन्ध्या नारी भी सन्तानोत्पत्ति में सक्षम हो जाती है ॥१९-२०॥

वनिता चेत् पिबेन्नित्यं बन्ध्यापि लभते सुतम् ।
वाचस्पतिः स्यान्मूकोऽपि मुसलीं वचया भजन् ।।२१।।
सेविता भूशिरीषेण जरामरणनाशिनी ।
तक्रेणालोड्य संपीता पाण्डुरोगनिवारिणी ।।२२।।

मुसली का चूर्ण, वचा (कुलंजन) के साथ खाने से गूँगा व्यक्ति भी बृहस्पति के समान प्रखर वक्ता बन जाता है । इसे शिरीष के साथ लेने से जरा-मरण का निवारण होता है । इस चूर्ण को मट्ठा के साथ पान करने से पांडुरोग का नाश होता है ॥२१-२२॥

निर्गुण्डीस्वररसैः पीता वज्रकायप्रदायिनी ।
अजामूत्रेण संपीता वलीपलितनाशिनी ।।२३।।
नारिकेलाम्बुना पीता मुसली विषनाशिनी ।
कालसर्पविषं हन्यात् पटोलेन युता यदि ।।२४।।

इति मुसलीकल्पः सम्पूर्णम् ।

इस मुसली-चूर्ण को निर्गुण्डी के रस के साथ खाने से शरीर वज्रवत् सुदृढ़ हो जाता है । बकरे के मूत्र के साथ इसके चूर्ण के सेवन से वलीपलित रोग का नष्ट होना सम्भव हो जाता है ।

नारियल के जल से पान करने पर मुसली विष-विनाशिनी हो जाती है । पटोल-पत्र के साथ इसका सेवन विषघ्न होता है ॥२३-२४॥

इस प्रकार मुसलीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ मुण्डीकल्पः

भिक्षूत्तमाङ्गपरिकल्पितनामधेयां
तां चूर्णयेन्ननु समूलफलां च खल्वे ।
तक्रारनालमधुदुग्धधृतैः प्रयोगात्
षण्मासतः खलु नरा अजरामराः स्युः ।।१।।
सुपर्णचक्षुः श्रवणे वराहो
ज्ञानेन हंसः स्वरकिन्नरश्च ।
बलेन भीमश्चलनेन वायुः
स्याद्गीष्पतेश्चापि धिया समानः ।।२।।

मुण्डी की जड़ को उसके फल सहित खरल में डाल कर महीन चूर्ण बना लें । यदि इसका प्रयोग मनुष्य मट्ठा, कांजी, मधु, दूध तथा घृत से लगातार छः महीने तक कर ले तो वह जरा-मृत्यु से मुक्त हो जाता है ।

इसके सेवन से गृध्र पक्षी के समान दूर दृष्टि वाला, श्रवण में शूकर के सदृश कानों वाला, ज्ञान में हंस पक्षी, कंठस्वर में किन्नर, पराक्रम में भीमसेन, गति में पवन तथा बुद्धि में देवगुरु बृहस्पति के तुल्य बन जाता है।।१-२।।

सुरासुरैः स्तूयमाना सा मुण्डी त्रिविधा मता ।
सिता रक्ताऽसिता चेति सत्त्वराजसतामसैः ।।३।।
गुणैरेभिः कमाज्जातां कथयामास तां शिवः ।
शुक्लपक्षेऽथ पञ्चम्यां पौर्णम्यां च समाहितः ।।४।।

देवों तथा दैत्यों द्वारा वन्दना-प्राप्त यह मुंडी (गोरखमुंडी) प्रजाति भेदानुसार तीन प्रकार की कही गयी है, जैसे— श्वेत, रक्त तथा कृष्णवर्णा। अपनी प्रजातियों के अनुसार ही ये तीनों क्रमशः सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुणप्रधान होती हैं । मुण्डी के इन त्रिविध गुणों का कथन स्वयं शिवजी ने किया है । शुक्लपक्षीय पंचमी या पूर्णिमा तिथि को सावधानीपूर्वक,।।३-४।।

रेवतीरोहिणीपुष्यश्रवणेषु द्विजोत्तमैः ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्ग्रहीतव्या समूलतः ।।५।।
तच्चूर्णसेवनात् स्याच्च शारीरं बलमुत्तमम् ।
छायाशुष्कं तु तच्चूर्णं कर्षं गोपयसा सह ।।६।।
भोजयेच्चतुरो मासान् दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।

इति मुण्डीकल्पः सम्पूर्णम् ।

रेवती, रोहिणी, पुष्य और श्रवण नक्षत्रों में विप्रों द्वारा गन्ध-पुष्पादि से पूजन कराकर इसे जड़सहित ग्रहण करें ।

इसके चूर्ण के सेवन से शारीरिक बलवर्धन होता है । छायादार स्थान में निर्मित इसके चूर्ण को गोदुग्ध के साथ एक कर्ष की मात्रा में चार महीने तक प्रयोग करने से प्रयोक्ता दीर्घायु बन जाता है ॥५-६॥

प्रयोग - मन्त्रः –

''ॐ नमो भगवतेऽमृतोद्भवायामृतं कुरु स्वाहा ।''

उपर्युक्त मन्त्रोच्चार करते हुए उत्पाटन या प्रयोग करना आवश्यक होता है ।

इस प्रकार मुण्डीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ चित्रककल्पः

अथातः संप्रवक्ष्यामि चित्रकं कल्पमुत्तमम् ।
ग्रामान्ते वा श्मशाने वा वल्मीके वा चतुष्पथे ।।१।।
गृहस्यातिसमीपे वा चित्रकं परिवर्जयेत् ।
सूचीपत्रमुखं श्रेष्ठं तथा मण्डलपत्रकम् ।।२।।
उभौ तौ चित्रकौ ग्राह्यौ सूचीमण्डलपत्रकौ ।

अब यहाँ श्रेष्ठतम चित्रक का निरूपण किया जा रहा है । ग्राम के सीमावर्ती स्थान, श्मशान-भूमि, वल्मीक (दीमकों द्वारा लगाया गया मिट्टी का ढेर), चौराहा तथा आवास-स्थल के सन्निकट स्थित चित्रक का ग्रहण करना वर्जित है । सूची-पत्रमुख तथा मंडल पत्रक नामक चित्रक उत्तम होते हैं ।।१-२।।

कार्तिके मार्गशीर्षे वा चित्रकं चोद्धरेद् बुधः ।।३।।
तस्य स्वरसकं रात्रौ हिमे संस्थाप्य चाहरेत् ।
द्वित्रिमासप्रयोगेण दृढकायो जितेन्द्रियः ।।४।।

अत: ये दोनों प्रकार के चित्रक ग्रहणीय होते हैं । कार्तिक या मार्गशीर्ष (अग्रहायण) मास में इनका उत्पाटन करना प्रशस्त माना जाता है।

रात्रि के समय जब ओस पड़ रही हो उसी समय इसके रस को निकालें । इसके दो-तीन मास तक प्रयोग करने के फलस्वरूप मानव दृढ़-देही तथा इन्द्रियनिग्रही बन जाता है ।।३-४।।

चित्रकं मासमेकं तु तक्रेण सह यः पिबेत् ।
नश्यन्ति व्याधयःसर्वे कामदेवोपमो भवेत् ।।५।।
क्षीरेण मासमेकं तु चित्रकं भक्षयेन्नरः ।
वज्रदेहो महाकायो महाबलपराक्रमः ।।६।।

चित्रक का सेवन मट्ठा के साथ एक महीने तक कर लेने पर समस्त रोगों का क्षय हो जाता है तथा औषधसेवी कामदेव के समान सौन्दर्यवान् बन जाता है ।

इसका प्रयोग दूध के साथ एक मास तक करने वाला मनुष्य विशालकाय, वज्रदेही तथा पराक्रमी बन जाता है ।।५-६।।

कटुत्रयेण संयुक्तो घृतेन मधुनापि वा ।
चित्रकं भक्षयेत् प्राज्ञो बिडालपदमात्रया ।।७।।

षण्मासयोगतो यान्ति वलयः पलितानि च ।
पाण्डुरोगमपस्मारं जलोदरभगन्दरौ ।।८।।

चित्रक के साथ कटुत्रय (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) मिलाकर घी तथा मधु के साथ एक कर्ष की मात्रा में छह मास तक उसे खाने से वलीपलित, पांडुरोग, अपस्मार (मृगी) एवं भगन्दर (गुदा का रोग विशेष) रोग विनष्ट हो जाया करते हैं ।।७-८।।

कृच्छ्रौ तु मेहकुष्ठौ च हन्ति वह्निर्निषेवितः ।
चित्रकं मासमेकं तु गोमूत्रेण नरः पिबेत् ।।९।।
सर्वे रोगाः प्रशाम्यन्ति कान्तिश्च नितरां भवेत् ।
चित्रकं मासमेकं तु मधुना सह यः पिबेत् ।।१०।।

इसके सेवन से दुष्कर प्रमेह (इसके बीस प्रकार कहे गये हैं) तथा कुष्ठ रोग का विनाश हो जाता है । इसे गोमूत्र के साथ एक मास तक पीने वाले के समस्त रोगों का उपशम होता तथा वह दीप्तिमान हो उठता है । मधु के साथ इसका प्रयोग करने पर एक महीने में ही, ।।९-१०।।

मेधावी बलसंपन्नस्तेजस्वी प्रियदर्शनः ।
जीवेद्वर्षशतं सोऽयं वलीपलितवर्जितः ।।११।।
चित्रकं क्षीरमधुनोर्मुष्टिश्चूर्णाज्ययोरपि ।
रसायनमहोरात्रं स्थापयित्वाऽथ पूजयेत् ।।१२।।

इसका प्रयोक्ता मेधावी, बलवान, तेजस्वी तथा सभी के लिए प्रियदर्शन बनकर वलीपलित से विमुक्त हो शतायु बन जाता है ।

इस चित्रक को दूध तथा मधु के साथ, मुष्टि (एक प्रकार का विष, कुचिला) को चित्रक-चूर्ण तथा घी के साथ सेवन करना रसायन का कार्य करता है । इसे स्थापित कर रात-दिन इसकी पूजा करनी चाहिए ।।११-१२।।

रक्ताम्बरधरो मौनी रक्तगन्धानुलेपनः ।
रक्तमाल्यानुरक्तोऽसौ बलिं दद्याद्विचक्षणः ।।१३।।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पञ्चम्यां श्रवणर्क्षके ।
चन्द्रताराबले चैव मन्त्रमेतज्जपेन्नरः ।।१४।।

बलि-प्रदान के समय मनुष्य को मौन धारण कर, लाल वस्त्र पहनकर, लाल चंदन को लेपित कर तथा गले में लाल माला धारण करके ही बलिकर्म सम्पन्न करने चाहिए ।

कृष्णपक्षीय अष्टमी, चतुर्दशी या श्रवण नक्षत्र से युक्त पंचमी तिथि में चन्द्रमा तथा तारागणों के बलवान रहने पर निम्नांकित मंत्र का जाप करें— **''ॐ चण्डि चित्राय स्वाहा''** ॥१३-१४॥

अनेनैव तु मन्त्रेण गन्धमाल्यानुलेपनम् ।
बलिं दद्यात् पुनर्मन्त्रमेतदुच्चारयेद् बुधः ॥१५॥
ॐ सत्यवति महौषधि मा चलः ।
समयमन्त्रः समय हुं फट स्वाहा ।
समूलमेतदुत्पाट्य छायाशुष्कं तु कारयेत् ।
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा घृतेन मधुनापि वा ॥१६॥

उक्त मंत्र **''ॐ चण्डि चित्राय स्वाहा''** बोलकर गंध माला को लिप्त कर बलि प्रदान करें । तत्पश्चात् निम्नलिखित मंत्र को पढ़ें —

''ॐ सत्यवति महौषधि मा चलः''

समयमन्त्रः— **'समय हुं फट् स्वाहा'**

इसके अनन्तर इसे जड़सहित उखाड़कर छाया में सुखा डालें । पुनः इसका सूक्ष्म चूर्ण बनाकर इसे घृत और मधु के साथ,॥१५-१६॥

कटुत्रयसमायुक्तं विडालपदमात्रकम् ।
सप्ताहं भक्षयेत् प्रातः क्षीरसेवी जितेन्द्रियः ॥१७॥
दीर्घमारोग्यवान् जीवेद्वलीपलितवर्जितः ।
संवत्सरप्रयोगेण शतमायुरवाप्नुयात् ॥१८॥

इति चित्रककल्पः सम्पूर्णम् ।

त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) से समाविष्ट कर प्रातःकाल एक कर्ष की मात्रा में सप्ताह-भर सेवन करें । सेवन-काल में ब्रह्मचर्यपूर्वक केवल दुग्धाहार ही ग्रहण करना चाहिए । इस प्रक्रिया का प्रयोक्ता नीरोगी तथा वलीपलित से मुक्त होकर दीर्घजीवी बनता है ।

इसके सतत प्रयोग से एक वर्ष में ही शतायु हो जाता है ॥१७-१८॥

इस प्रकार चित्रककल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ मण्डूककल्पः

महानद्यां समुद्रे वा देवखाते महाह्रदे ।
अत्यगाधे तले यस्तु मण्डूको निवसेत् स तु ।।१।।
अतिस्थूलः स्वर्णवर्णो दीर्घजीवी बिलेशयः ।
शरत्काले च निर्गत्य वसेदन्यत्र सर्वदा ।।२।।

महानदी (ब्रह्मपुत्र, सिन्धु आदि नदियाँ), सागर, देवखात, महाह्र तथा अपरिमित जलराशि में रहने वाला मण्डूक (मेढ़क) अत्यन्त स्थूलकाय, स्वर्णाभ वर्णीय, दीर्घजीवी तथा विवर के अन्दर रहने वाला होता है । वह सर्वदा शरद् ऋतु में ही बाहर निकलता तथा अन्य स्थानों में जाता है ॥१-२॥

धातुः कोऽपि भवेदस्य मस्तके रत्नसन्निभः ।
तं च संगृह्य शिरसस्तस्य यत्नेन मानवः ।।३।।
धारयेत् स्वकरे यावत्तावत्कालं स जीवति ।
तत्स्पृष्टोदकसंसेकाद् नश्यन्ति गरलानि च ।।४।।
वातगुल्मोदरावर्तनेत्रशूलादिका रुजः ।
नश्यन्ति स्पर्शमात्रेण सतैलाभ्यङ्गतोऽपि वा ।।५।।

इति मण्डूककल्पः सम्पूर्णम् ।

ऐसे मेढ़क के मस्तक में एक प्रकार का मणि होता है । इस मणि को उसके शिर से सावधानीपूर्वक निकालकर अपने हाथ में धारण करने वाला तब तक जीवित रहता है जब तक वह रत्न उसके हाथ में स्थित रहता है । इसके स्पर्शित जल से विषैले स्थान का सेंक (Fomentation) करने से विष का प्रभाव जाता रहता है ।

उसके स्पर्शन से वातगुल्म (वायुगोला) उदावर्त (वायु का एक रोग जिसमें मूल-मूत्र के वेग को अवरुद्ध कर वायु का ऊपर की ओर गमन होता है) तथा नेत्रशूल (आँखों में होने वाली पीड़ा) आदि रोग दूर हो जाते हैं अथवा तैल की मालिश से भी यही फल मिलता है ॥३-५॥

इस प्रकार मण्डूककल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ श्रीफलकल्पः

कृष्णाष्टम्यां शुचिर्भूत्वा बिल्ववृक्षं निमन्त्रयेत् ।
माधवे ज्येष्ठमासे वा फलाद्बीजं समाहरेत् ।।१।।
बिल्वबीजानि संगृह्य सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ।
त्रिफलाक्वाथतोयेन सप्तवारं विभावयेत् ।।२।।

सर्वप्रथम कृष्णपक्षीय अष्टमी तिथि में बिल्ववृक्ष (बेल को पेड़) को आमंत्रित कर दें । पुनः वैशाख या ज्येष्ठ मास में बेल के बीज का ग्रहण करें।

इस बेल के बीज का बारीक चूर्ण करके उसे त्रिफला-क्वाथ (काढ़ा) से सात बार भिंगोये ।।१-२।।

ततो यन्त्रेण निष्पीड्य तैलं ग्राह्यं च यत्नतः ।
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य भूमौ तं च निधापयेत् ।।३।।
मासात्परं तमुद्धृत्य रक्षां कुर्याद्विधानतः ।
विरेकवमने कृत्वा शुद्धकोष्ठः शुभे दिने ।।४।।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पुष्यर्क्षेऽपि च बुद्धिमान् ।
निर्वातमन्दिरे तैलं कर्षमात्रं पिबेन्नरः ।।५।।

तदनन्तर उसे यन्त्र में भरकर उसका तैल निकाल लें और उस तैल को किसी चिकने पात्र में डालकर भूमि के अन्दर स्थापित कर दें ।

एक मास के उपरान्त उसे सावधानीपूर्वक बाहर निकालकर संरक्षण करें । अब किसी शुभ दिवस में कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा पुष्य नक्षत्र में वमन-विरेचन के द्वारा आँतों को निर्मल कर एक कर्ष परिमाण में उसे ऐसे स्थान में पान करें जहां वायु का प्रवेश न हो ।।३-५।।

मात्रातिक्रमतो मूर्च्छा भ्रमो दाहस्तृषापि च ।
कण्ठोष्ठयोः शुष्कता च भवेयुर्भृशदुःखदा ।।६।।
कपिलाक्षीरमासिंच्य गण्डूषं कारयेत्तदा ।
जीर्णान्ते कपिलाक्षीरं षष्टिकान्नं च भोजयेत् ।।७।।

इसकी अधिक मात्रा हो जाने पर मूर्च्छा (अचेतनता), भ्रम, दाह (जलन), पिपासा,गला तथा होंठों में सूखापन आदि अनेक प्रकार के क्लेशदायक लक्षण उपस्थित हो जाते हैं ।

ऐसी स्थिति आने पर कपिला गाय के दूध से अभिसिंचन कर गण्डूष (कुल्ला) करना उचित है । जीर्णावस्था में कपिला गौ के दुग्ध में साँठी का चावल पकाकर भक्षण करें ।।६-७।।

तैलस्य सेवनादस्य व्याधिराधिश्च नश्यतः ।
प्रायः सर्वे व्याधयश्च विनश्यन्त्यस्य पानतः ।।८।।
श्रुतिज्ञः सुभगः श्रीमान् कर्णिकारसमद्युतिः ।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं नरः ।।९।।

इस तैल के प्रयोग - स्वरूप आधि-व्याधि (मानसिक तथा शारीरि कष्ट) नष्ट हो जाती तथा इसके पान द्वारा सभी रोगों का नाश हो जाता । इसके सेवन से मनुष्य शास्त्रज्ञ, भाग्यवान, दीप्तिमान तथा स्वर्णचम्पा पु के समान चमकीला बनकर वलीपलित रोगों से विरहित होकर एक सौ व की दीर्घ आयु पाने में सफल होता है ॥८-९॥

सप्तभिर्मन्त्रयित्वा तु भिषग्भिर्व्याधितो नरः ।
पश्चात्तैलमिदं तीव्रवीर्यं मानेन संपिबेत् ।।१०।।

रुग्ण व्यक्ति को चिकित्सक द्वारा सात बार अभिमंत्रित कराकर इ तीक्ष्णवीर्य तैल का पान उचित मात्रा में करना चाहिए ॥१०॥

जाप-मन्त्रः – ॐ नमो वीरजननि स्वाहा – इति मन्त्रं जपेत् ।

इति श्रीफलकल्पः सम्पूर्णम् ।

जाप-मन्त्रः– पुनः ऊपर लिखित मंत्र का जाप करना अनिव होता है ।

इस प्रकार श्रीफलकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन् व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ लाङ्गलीकल्पः

अथातः संप्रवक्ष्यामि चोषधीकल्पमुत्तमम् ।
लाङ्गलीत्योषधिः काचिद्विख्याता धरणीतले ।।१।।
तस्या मूलं तु संगृह्य गन्धकं स तथैव हि ।
रसेन सह संमर्द्य ताम्रपत्राणि लेपयेत् ।।२।।

यहाँ एक ऐसी श्रेष्ठ औषधि का वर्णन किया जा रहा है जो इस तल पर लांगली नाम से प्रख्यात है ।

इस लांगली की जड़ और गन्धक को लेकर पारद के साथ मिलाकर सलें और उसे ताँबे के पत्तर पर लेपित कर दें ॥१-२॥

दद्याद्गजपुटं स्वर्णवर्णत्वं यान्ति तानि च ।
सुखप्रसवदं तच्च सूतिकारोगशान्तिदम् ।।३।।
जलेन लाङ्गलीकन्दं पिष्ट्वा हस्ते प्रलेपयेत् ।
वज्रतुल्यबलं तस्य करस्याविर्भवेत्ततः ।।४।।

अब इसे गजपुट यंत्र में रखकर नीचे से अग्नि प्रज्वलित कर दें तो ह ताम्रपत्र स्वर्ण के रूप में बदल जाता है । यह प्रसवकारक होता है तथा तिका रोग (प्रसवोपरांत आने वाला ज्वर) का शमन करता है ।

लांगली-कंद को जल में पीसकर हाथों में लेपन करने से हाथ वज्र समान कठोर हो जाते हैं ॥३-४॥

पुरा ह्यमीषां योगानां मद्रराजमयोदितम् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा सिद्धिमायाति चोत्तमाम् ।।५।।
ॐ नमो भगवते डामरेश्वराय स्वाहा ठः ठः ।
तत्कालोत्पाटितं तस्याः कन्दमार्द्रं विमर्दयेत् ।
पञ्च कर्षास्ततो भुक्त्वा शरीरे च विलेपयेत् ।।६।।

पूर्वकाल में इस योग का वर्णन मद्रराज द्वारा किया गया था । इसके का एक सौ आठ बार जाप करने से मानव उत्तम सिद्धि पाने का धिकारी बनता है । इसके मंत्र इस प्रकार से हैं—

"ॐ नमो भगवते डामरेश्वराय स्वाहा ठः ठः"

उपर्युक्त मंत्रोच्चारपूर्वक उत्पाटित किये गये इसके गीले कन्द को लकर पाँच कर्ष की मात्रा में भक्षण करने के उपरान्त शरीरांग पर लेपन लें ॥५-६॥

अथ चाभिमुखं गच्छेद्युद्धस्य जयमाप्नुयात् ।
लाङ्गलीसैन्धवाभ्यां च गन्धकेन च लेपयेत् ।।७।।
ताम्रपत्राणि चूर्णानि विकिरेदयसस्ततः ।
अथ संशोष्य लाङ्गल्याः कल्केनोपरि लेपयेत् ।।८।।

इस लेप के लगाने के पश्चात् युद्धाभिमुख होने पर विजय सुनिश्चि रहती है ।

लांगली, सेंधा नमक और गंधक को मिलाकर ताँबे के पत्तरों पर ले लगाकर ऊपर से लोहे का बुरादा छिड़क देवें । इसके अनन्तर उसे सुखाक लांगली के कल्क का लेप लगा देना चाहिए ।।७-८।।

आतपे शोषयित्वात्र दहेद् गजपुटेन च ।
तानि भस्मत्वमायान्ति ताम्रपत्राणि तत्क्षणात् ।।९।।
भस्मेदं भस्मसात्कुर्याद्विषजानामयान् ध्रुवम् ।
दद्याद्बलं दीर्घमायुः प्रजावृद्धिं सुसेवनात् ।।१०।।

इति लाङ्गलीकल्पः सम्पूर्णम् ।

पुनः इसे धूप में सुखाकर गजपुट में रखकर आग जला दें । इस प्रक्रिया के द्वारा ताम्रपत्र शीघ्र ही भस्म के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

इस भस्म के प्रयोग से विषोत्पन्न रोग निश्चित रूप से भस्मीभूत हो जाते हैं तथा इसके विधिवत् सेवन से बलवृद्धि, संतानवृद्धि तथा आयुष्य की वृद्धि होती हैं ।।९-१०।।

इस प्रकार लांगलीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

✲

अथ आमलकीकल्पः

पञ्चाङ्गानामामलक्याः क्वाथं मण्डलमापिबेत् ।
अष्टादशविधानां च कुष्ठानां प्रशमो भवेत् ।।१।।
आमलक्याः समादाय मूलं संशोष्य चूर्णयेत् ।
तन्मूलस्य त्वचो वापि चूर्णं सम्यक् तथाचरेत् ।।२।।

आमलकी (आँवला) के पंचांग का काढ़ा बना लें और छानकर पान करें तो अठारह प्रकार के कुष्ठ रोगों का प्रशमन होता है ।

आमलकी की जड़ का चूर्ण भली प्रकार से तैयार कर लें । अथवा उसके मूल का छिलका निकालकर उसे ही सुखाकर चूर्ण बना लेवें ॥१-२॥

मधुना चोपभुक्तं सत् प्रदरं नाशयेत् स्त्रियाम् ।
तच्चूर्णं मधुना चैव घृतेन च समाहरेत् ।।३।।
औदुम्बरफलाकारमात्रया प्रत्यहं त्रिधा ।
मासैः षड्भिर्महाकुष्ठमसाध्यं विजयेदिदम् ।।४।।

इसके चूर्ण का मधु के साथ खाने से स्त्रियों का प्रदर रोग (योनिमार्ग से चावल के धोवन-जैसा श्वेत पानी का स्राव होना, ल्यूकोरिया) नष्ट हो जाता है ।

आमलकी चूर्ण को घी तथा मधु के साथ गूलर फल के बराबर परिमाण में नित्यप्रति तीन बार खायें । इस प्रकार छः महीने तक सेवन करने के फलस्वरूप दु:साध्य महाकुष्ठ भी दूर हो जाता है ॥३-४॥

नखाः केशाश्च दन्ताश्च नव्याः स्युः पुनरेव च ।
तैलेन सह तच्चूर्णं विपाच्याभ्यङ्गमाचरेत् ।
कण्डूं विचर्चिकां पामां मण्डलं च प्रशामयेत् ।।५।।
गोमूत्रेण च तच्चूर्णं नित्यज्वरमपोहयेत् ।
तदेव च सितादुग्धैः कारयेदधिकं बलम् ।।६।।

इसके सेवन से नाखून, दाँत तथा केश नवीनता को प्राप्त हो जाते हैं । इसके चूर्ण को तैल में पकाकर शरीर पर मालिश करने से कण्डू, विचर्चिका (Psoriasis), पामा (खुजली) तथा मंडल नामक कुष्ठरोग निर्मूल हो जाता है । इस चूर्ण को गोमूत्र के साथ पान करने पर सततक ज्वर (बराबर बना रहने वाला ज्वर) छूट जाता है । इसी चूर्ण को मिश्री तथा दुग्धानुपान द्वारा सेवन करने पर बलवर्धन होता है ॥५-६॥

पुनर्नवारसेनैतद्वातव्याधिं विनाशयेत् ।
कुष्माण्डस्वरसेनैतदुदरं च निवारयेत् ।।७।।
क्वाथेन त्रिफलायाश्च रक्तपित्तं हरेत्तथा ।
वचया सह तद् भुक्तं कुर्याद् बलमनुत्तमम् ।।८।।

इति आमलकीकल्पः सम्पूर्णम् ।

इसका प्रयोग पुनर्नवा (गदहपूरना) के रस से करने पर वातरोगों का शमन होता है तथा कूष्मांड (सफेद कोंहड़ा, पेठा) के रस से लेने पर उदर-सम्बन्धी विकार नष्ट होते हैं ।

त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) के काढ़ा के साथ पान करने से यह रक्तपित्त (एक प्रकार का पित्तविकार) नाशक तथा वचा (कुलंजन) के साथ खाना बलवर्धक होता है ।

इस प्रकार आमलकीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ श्वेतगुञ्जाकल्पः

मूलं तु श्वेतगुञ्जाया ऋक्षे उत्तरभाद्रके ।
उत्तराभिमुखं ग्राह्यमाहरेच्च रसं ततः ।।१।।
कुर्याच्च भावनां तत्र सितसूत्रचयस्य च ।
एतैश्च कृत्वा सूत्रैस्तु वर्तिमुज्ज्वालयेच्च ताम् ।।२।।

श्वेतगुंजा (सफेद घुंघची) की जड़ को उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में लेकर उत्तराभिमुख होकर उसका रस निचोड़कर निकाल लेवें ।

तत्पश्चात् उसी रस में सफेद धागों को भिंगोकर बत्ती बनाकर दीपक में जला दें ।।१-२।।

संगृह्य कज्जलीं तस्य गव्येनाज्येन चाञ्जयेत् ।
आमयाश्चाक्षुषाः सर्वे शमं यान्ति न संशयः ।।३।।
श्वेतगुञ्जारसैः सम्यक् सर्वाण्यङ्गानि लेपयेत् ।
एवं सप्ताचरेन्मासान् गात्रं भवति वज्रवत् ।।४।।

उस दीपक से निर्गत काजल को एकत्रित कर गाय के घृत में मिलाकर अंजन बना लें । इस अंजन को आँखों में लगाने से सभी नेत्ररोगों का उपशम होता है । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए ।

सफेद घुंघची के रस को निचोड़कर अच्छी प्रकार से सम्पूर्ण शरीर में लेपित कर लें । इस प्रयोग के द्वारा सात महीने में ही शरीर वज्र जैसा कठोर हो जाता है ।।३-४।।

अङ्गारराशिमध्येऽपि स्थितो दह्येत नाग्निना ।।५।।

ऐसा व्यक्ति अग्नि-प्रवेश करने पर भी दग्ध न होकर संरक्षित रहता है । इसके हेतु निम्न मंत्र का साधक को उच्चारण करना चाहिए ।।५।।

वह मंत्र इस प्रकार से है—

''ॐ वज्रकिरणे अघृतं कुरु स्वाहा । ॐ नमो महामाये वह्निं रक्ष स्वाहा ।''

समाहृत्य श्वेतगुञ्जामूलं तच्च विमर्दयेत् ।
ततः कुसुम्भस्य रसैः सह तत् पेषयेन्मृदु ।।६।।
तेनैव रञ्जयेद्वस्त्रं त्रिंशद्वारं मुहुर्मुहुः ।
धृत्वाथ तज्जलं गाहेदगाधमपि मानवः ।।७।।

सर्वप्रथम श्वेत गुंजा के मूल को लेकर उसे मर्दित कर लें । तदनन्तर कुसुम्भ (बर्रै) पौधे के रस द्वारा उसे आहिस्तापूर्वक पीस लें तथा उससे तीस बार कपड़े को बारम्बार रंग डालें ।

उक्त प्रकार से तैयार किये गये वस्त्र को पहनकर मनुष्य अगाध जलराशि का भी पता लगा लेता है ॥६-७॥

जल-स्तम्भन मन्त्र:—"**ॐ नमो भगवते रुद्राय जलं स्तम्भय ठः ठः पारः**"– इस मंत्र के द्वारा मानव अपने सामर्थ्य के बल-बूते पर जल-स्तम्भन कर सकता है ।

पुष्यर्क्षे श्वेतगुञ्जाया विधिना मूलमुद्धरेत् ।
महिषाक्ष्या रसैः सम्यक् तत् पिष्ट्वा मधुना सह ।।८।।
अञ्जयेच्चाक्षियुगलं दिनान्ते च शिवालये ।
मासैः षड्भिर्निधिं पश्येत् साधकोऽपि भवेदसौ ।।९।।

इति श्वेतगुञ्जाकल्पः सम्पूर्णम् ।

श्वेतगुंजा के मूल को पुष्य नक्षत्र में विधिवत् उखाड़कर महिषाक्षी नामक पौधे के रस में अच्छी तरह से पीस डालें । तदनन्तर उसमें मधु मिलाकर सायंकाल शिवमंदिर में नेत्राञ्जन करें । इसी प्रकार छह महीने तक बराबर प्रयोग करते रहने पर वह प्रयोक्ता भूमिगत धन-भण्डार को भी देख सकता है ॥८-९॥

इस प्रकार श्वेतगुञ्जाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ मण्डूकब्राह्मीकल्पः

ब्राह्मीं मण्डूकपूर्वीं तु शुक्लपक्षे समुद्धरेत् ।
पुष्यर्क्षे च समूलां तां समुत्पाट्याविचूर्णयेत् ।।१।।
विडालपदमात्रं तु पिबेद् गोपयसा सह ।
सप्तरात्रप्रयोगेण कुक्षिरोगो विनश्यति ।।२।।

शुक्लपक्षीय तिथि के पुष्य नक्षत्र में मण्डूक ब्राह्मी को जड़सहित उखाड़कर उसका सूक्ष्म चूर्ण बना लें ।

इस चूर्ण को गोदुग्ध के साथ एक कर्ष के परिमाण में सात दिनों तक खाने से कुक्षिरोग नष्ट हो जाता है ॥१-२॥

द्विसप्ताहप्रयोगेण दृढदेहो भवेन्नरः ।
क्षीरेण पानतो मासात् सर्वे नश्यन्ति चामयाः ।।३।।
मासद्वयप्रयोगेण निधानानि तु पश्यति ।
अदृश्यश्च त्रिभिर्मासैर्भवेदेव न संशय ।।४।।

इसका प्रयोग दो सप्ताह तक कर लेने पर मनुष्य का शरीर सुदृढ़ हो जाता है । एक मास तक निरन्तर पान करने से सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं । दो मास के सेवन से भूमि में गड़े हुए धन दृष्टिगोचर होने लगते हैं तथा तीन मास के प्रयोग से अंतर्धान होने की शक्ति निश्चय ही प्राप्त हो जाती है ॥३-४॥

चतुर्मासैश्च पश्येत् स विमानानि सुपर्वणाम् ।
मासषट्कप्रयोगेण खेचरत्वमवाप्नुयात् ।।५।।
संवत्सरप्रयोगेण द्वितीय इव शङ्करः ।
भवेत् कालत्रयं चापि जानाति भुवनत्रयम् ।।६।।

चार मास के पश्चात् देवयानों का दर्शन कर सकता है तथा छह मास के निरन्तर प्रयोग से खेचरत्व (आकाशचारिता) की शक्ति से सम्पन्न हो उठता है । एक वर्ष तक प्रयोग करने के फलस्वरूप दूसरे शंकर के समान बन कर त्रिकालदर्शी (भूत, भविष्य एवं वर्तमान का द्रष्टा) हो जाता है ॥५-६॥

निर्यान्त्यस्य प्रयोगेण यक्षरक्षांसि दूरतः ।
अनेनैव प्रयोगेण बन्ध्या पुत्रवती भवेत् ।।७।।
सम्पक्वमूलं सङ्गृह्य मध्वाज्याभ्यां च सेवयेत् ।
जलोदरं तथा वातगुल्मशूलं विनश्यति ।।८।।

इसके प्रयोग के परिणामस्वरूप यक्ष तथा राक्षसगण भी दूर पलायित हो जाते है । इसके सेवन से वन्ध्या नारी भी प्रजनन-शक्ति से सम्पन्न हो जाती है ।

परिपक्व जड़ वाली मण्डूकब्राह्मी को ग्रहण कर मधु तथा घृत से सेवन करने पर जलोदर (पेट में जल का संचयन), वातगुल्म (वायुगोला) की पीड़ा दूर हो जाती है ।।७-८।।

इति मण्डूकब्राह्मीकल्पः सम्पूर्णम् ।

प्रयोग-विधि— सेवन काल में इसे नीचे लिखे मंत्र द्वारा अभिमंत्रित करके खाना चाहिए । मंत्र इस प्रकार से है—

''ॐ अमृतोद्भवायामृतं कुरु स्वाहा'' — अनेन मन्त्रेणाभिमन्त्र्य भक्षयेत् ।

इस प्रकार मण्डूकब्राह्मीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ वन्दाकल्पः

संगृह्य द्रुमवन्दाकं संयोज्य स्वर्णपत्रकैः ।
हस्ते कण्ठे च कट्यां च धारयेद् रोगशान्तये ।।१।।
विशाखायां समुद्धृत्य वन्दाकं राजवृक्षकम् ।
स्थापयेद् गृहमध्ये च नाप्नुयादग्निजं भयम् ।।२।।

वन्दाक (वृक्ष की शाखाओं में लटकने वाली लम्बी जटाएँ) को लेकर उसे सोने के पत्तर में भरकर हाथ, गले या कमर में बाँधने से रोगों का शमन होता है ।

विशाखा नक्षत्र में राजवृक्ष के वन्दाक को उखाड़कर गृह के मध्य भाग में स्थापित कर देने से अग्निभय नहीं रह जाता ॥१-२॥

रोहिण्यां वटवन्दाकं कटिस्थं वीर्यवर्धनम् ।
अश्वत्थभववन्दाकं रेवत्यां जीववर्धनम् ।।३।।
निर्गुण्डीभववन्दाकं भरण्यामाहरेत् सुधीः ।
क्षीरेण पीतं तत् कुर्याद्वीर्यवृद्धिं मनोबलम् ।।४।।

वटवृक्ष के वन्दाक (जटा) को रोहिणी नक्षत्र में लेकर कमर में बाँधने से वीर्यवर्धन होता है । पीपल वृक्ष पर लटकने वाली जटा को रेवती नक्षत्र में धारण करने से जीर्ववर्धन होता है ।

निर्गुण्डी वृक्ष के वन्दाक को भरणी नक्षत्र में लेकर दूध के साथ पीने पर वह वीर्य-वृद्धि करने के साथ ही मनोवल को भी बढ़ाता है ॥३-४॥

जम्बूवन्दाकजं चूर्णं तक्रपीतं विषं हरेत् ।
पुष्ये तिन्दुकवन्दाकमादाय वदने कृतम् ।।५।।
सर्पवृश्चिकलूतादिभवं हन्ति विषं ध्रुवम् ।
ब्रह्मवृक्षस्य वन्दाकं स्वात्यां क्षीरेण सेवितम् ।।६।।
सत्यं संजनयेदायुरधिकं ज्ञानमेव च ।
औदुम्बरस्य वन्दाकमेवं कुर्याद् दृढं बलम् ।।७।।

इति वन्दाककल्पः सम्पूर्णम् ।

जामुन वृक्ष के वन्दाक का चूर्ण बनाकर मट्ठा के साथ सेवन करने से विष का निवारण होता है । तिंदुक (तेनू वृक्ष) वृक्ष पर फैलने वाले वन्दाक को पुष्य नक्षत्र में लेकर मुख में धारण करने से साँप, बिच्छू तथा लूता (मकड़ी) आदि के विष का नाश हो जाता है ।

ब्रह्म वृक्ष (पलाश वृक्ष) का बाँदा स्वाति नक्षत्र में लेकर यदि दूध के साथ पान किया जाय तो आयु एवं ज्ञान की वृद्धि होती है । यह बात कभी मिथ्या नहीं होती ।

इसी भाँति गूलर वृक्ष के वन्दाक का सेवन व्यक्ति को बलवान बनाता है ।।५-७।।

इस प्रकार वन्दाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ बाकुचीकल्पः

सोमराजीभवं बीजं निस्तुषं ननु कारयेत् ।
तस्य कुर्यात्ततश्चूर्णं पलमात्रं पिबेत्ततः ।।१।।
उष्णोदकेन त्रिदिनान्यथ मूत्रेण तद् गवाम् ।
पिबेत्पञ्चदिनान्यासां क्षीरेणैकादशाहरेत् ।।२।।

सोमराजी (बाकुची) के बीजों का छिलका निकाल कर उसका चूर्ण कर लें। उस चूर्ण को गरम जल के साथ तीन दिनों तक एक पल की मात्रा में सेवन करें। गोमूत्र के साथ पाँच दिन तथा दूध से ग्यारह दिनों तक करें॥१-२॥

यावत्पञ्चदशाहोऽथ घृतेन सह सेवयेत् ।
मासं रसेनामलक्याः क्रमेणैवं भजेदिदम् ।।३।।
आहारः क्षीरसंयुक्तः सर्वदा जनयेत् सुखम् ।
वलीपलितनिर्मुक्तो दीर्घायुर्जायते नरः ।।४।।

इसका प्रयोग घी के साथ पन्द्रह दिन तक करके पुनः एक मास तक आँवला के रस से करना चाहिए। इसके सेवन-काल में दुग्धनिर्मित आहार ही ग्रहण करने चाहिए। इस प्रकार से सेवन किये जाने पर यह वलीपलित रोग से रहित कर मनुष्य को दीर्घ जीवन प्रदान करता है ॥३-४॥

बाकुच्याः किल पञ्चाङ्गं काञ्जिकेन विमर्दयेत् ।
तत्कल्कमध्ये वङ्गं तु सेचयेत् सप्तशो द्रुतम् ।।५।।
सोमराज्याश्च तैलेन तथा गन्धकपारदौ ।
सप्तमांसेन वङ्गस्य दत्त्वा चोपरि नागकम् ।।६।।

पहले बाकुची के पंचांग को कांजी के द्वारा मर्दित कर लें। तदनन्तर उसके कल्क के बीच में सात बार पिघलाये हुए वंग (राँगा) से सेचन करें।

अब बाकुची के तैल से गंधक और पारा को तथा वंग के सातवें अंश के ऊपर नाग (सीसा) का, ॥५-६॥

द्वादशांशेन तैः साकं संयोज्याथ च पेषयेत् ।
एवं कृते स्वयं वङ्गस्तारत्वमधिगच्छति ।।७।।
ॐ हे मनोहरे स्वाहा इति मन्त्रं तदा जपेत् ।
वाकुचीत्रिफलाव्योषकृशानुचिरबिल्वकान् ।।८।।

बारहवाँ भाग रखकर सभी को एक साथ पीस डालें। इस प्रक्रिया के द्वारा वंग चाँदी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस क्रिया को करते समय नीचे दिये गये मंत्र का जाप करें —

"**ॐ हे मनोहरे स्वाहा**" इति मन्त्रं तदा जपेत् ।

बाकुची, त्रिफला, व्योष (सोंठ, काली मिर्च, पीपर) कृशानु (चित्रक), चिरबिल्व, नीम तथा वन्दाक को गोमूत्र में मिलाकर एक साथ पीस डालें ।

निम्बवन्दाकसहितान् गवां मूत्रेण पेषयेत् ।
अष्टादशविधान कुष्ठान् निर्मूलयति तत्क्षणात् ।।९।।
उष्णोदकेन तच्चूर्णं सव्योषं शूलवेगजित् ।
सोमराजीमरिचयोश्चूर्णं वातविनाशकम् ।।१०।।

इति बाकुचीकल्पः सम्पूर्णम् ।

उक्त लेप को लगाने से अठारह प्रकार के कुष्ठरोगों का नाश हो जाता है । बाकुची का चूर्ण त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) के साथ मिलाकर गरम जल से पान करने पर शूल का शमन होता है । बाकुची तथा कालीमिर्च के चूर्ण का सेवन वातघ्न होता है ।।९-१०।।

इस प्रकार बाकुचीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ रुदन्तीकल्पः

रुदन्यां विद्यमानायां मयि चात्र प्रिये ! जनाः ।
जरया दुर्बलेनापि कुतः क्लिश्यन्यि भूतले ।।१।।
रुदन्तीलक्षणं वच्मि लोकानां हितकाम्यया ।
श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव चतुर्विधा ।।२।।

शिवजी पार्वती से बोले— हे प्रिये ! मुझ जैसे रुदन्ती की वद्यमानता में मनुष्य इस धरती पर वृद्धता तथा निर्बलता से क्यों कर पीड़ित ह सकते हैं ।

अब मैं जनकल्याण की भावना से इस रुदन्ती के लक्षण तुम्हें तलाता हूँ । इसके चार भेद माने गये हैं, जैसे— श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण १-२।।

तत्पत्रं चणकस्येव पुष्पं चापि तथाविधम् ।
पत्रेषु स्युर्हेमसमा बिन्दवः सकलेषु च ।।३।।
रसबन्धकरी ख्याता योगोक्तफलदायिनी ।
तमोषधिं समादाय शुक्लपक्षे शुभे दिने ।।४।।

इस रुदन्ती के पत्ते चने के पत्ते के समान छोटे होते हैं तथा इसके ल भी उसी प्रकार के होते हैं । पत्तों के ऊपर चमकदार सुनहली बिन्दियाँ खाई पड़ती हैं ।

यह पारद को बाँधनेवाली तथा योगशास्त्र में कथित फलदायिनी के प में विख्यात है । इसे शुक्लपक्षीय तिथि के शुभ मुहूर्त में ग्रहण कर महीन र्ण बना ले और उसे कड़ुवी तुम्बी में रख छोड़े ।।३-४।।

सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा कटुतुम्ब्यां विनिक्षिपेत् ।
कर्षमात्रप्रमाणेन पयिभोजी शुभे दिने ।।५।।
मध्वाज्याभ्यां भजेत् कृष्णाचूर्णक्षीरान्नभुग्भवेत् ।
षण्मासस्य प्रयोगेण वज्रकायो भवेन्नरः ।।६।।

किसी शुभ दिवस में घृत और मधु मिलाकर एक कर्ष की मात्रा में सेवन करें तथा इसके साथ कृष्णाचूर्ण (पीपर का चूर्ण) तथा दूध से अन्न भोजन करें । इस प्रकार छह महीने तक लगातार प्रयोग करने के णाम-स्वरूप मनुष्य वज्रदेहधारी बन जाता है ।।५-६।।

पञ्चाङ्गान्यस्य भुक्त्वा तु विमुच्येताखिलामयैः ।
विडालपदमात्रं तदन्वहं यो भजेन्नरः ।।७।।
न शीघ्रं स्याज्जरा तस्य वर्धते प्रत्यहं वयः ।
पानेन लेपनाच्चापि विषं हन्त्यस्य चूर्णकम् ।।८।।

उसमें डालकर खूब घोंटे । इसके अनन्तर उसे ताँबे के पतले पत्तरों पर ले
लगा दें ॥२१-२२॥

मूषामध्ये क्षिपेत् पश्चाद् ध्मानं खदिरवह्निना ।
कुर्यात् स्वर्णं जायते च निर्बीजं दोषवर्जितम् ॥२३॥
नस्यैः पानैस्तथा चैव लेपनैश्चापि सर्वदा ।
जङ्गमस्थावराख्यानि विषाण्युपविषाणि च ॥२४॥
नश्यन्ति नियतं देवि नात्र कार्या विचारणा ।

पुनः उसे मूषा नामक यन्त्र में भरकर नीचे से खदिरकाष्ठ की आँ
जला दे तो वह दोषविहीन स्वर्ण बन जाता है ।

रुदन्ती के रस द्वारा नस्य, पान तथा लेपन से जंगम-स्थावर सभ
प्रकार के विष सदैव के लिए नष्ट हो जाया करते हैं । हे देवि ! इसमें किस
प्रकार का सोच-विचार करना अनावश्यक होता है ॥२३-२४॥

अब नीचे दिये गये मंत्र के सहित इसका भक्षण करना चाहिए । मं
इस प्रकार से है—

अमृतेऽमृतमयेऽमृतसम्भवेऽमृतं मे कुरु । प्रसीद प्रसीद । अमृतोद्भ
ॐ जूं सः स्वाहा– इति मन्त्रेण भक्षयेत् ।

उत्पत्तिरस्या कुत्रेऽपि वदाम्यद्य वरानने !

हे वरानने ! अब मैं इसके उत्पत्तिस्थल का वर्णन कर रहा हूँ ।

कैलासे मन्दरे विन्ध्ये गङ्गासागरसङ्गमे ॥२५॥
श्रीशैले हेमकूटे च पारिजाते महेश्वरि ।
गिरीणां राज्ञि हिमवत्यथ पुण्यगिरिष्वपि ॥२६॥
इत्यमीषु प्रदेशेषु जायतेऽसौ महौषधिः ।

हे महेश्वरि! इस महान औषधि का प्रादुर्भाव कैलास, मन्दराचल
विन्ध्य पर्वत, गंगा नदी, सागर के संगम-स्थल, श्रीशैल पर्वत, हेमकू
पारिजात पर्वत, गिरिराज हिमालय तथा इसके अतिरिक्त अन्यान्य पुण्यशी
पर्वतों में होता है ॥२५-२६॥

अस्याः पूर्वं स्वरूपाणि मयोक्तानि महेश्वरि ! ॥२७॥

इति रुदन्तीकल्पः सम्पूर्णम् ।

हे महेश्वरि! इसके प्रकार - भेद से मैं तुम्हें पहले ही अवगत क
चुका हूँ ॥२७॥

इस प्रकार रुदन्तीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख
समाप्त हुई ।

❋

अथ कटुतुम्बीकल्पः

समुत्पन्ना मथ्यमाने क्षीरोदे कटुतुम्बिका ।
पिबेद्रसं गृहीत्वास्याः कटुतुम्ब्या रसायनम् ।।१।।
अस्याः संगृह्य बीजानि कुर्याच्चूर्णं सुसूक्ष्मशः ।
रात्रौ तु पयसा सार्धं शुण्ठ्या च सुविमिश्रितम् ।।२।।

यह कटुतुम्वी क्षीरसागर के मंथन-काल में उत्पन्न हुई थी । इसके रस का सेवन रसायन के समान गुणकारी होता है ।

सर्वप्रथम इसके बीजों को कूट-पीसकर बारीक चूर्ण बना लेना चाहिए। रात्रि में इसे शुंठी (सोंठ) के साथ दूध में मिलाकर रख छोड़ें ॥१-२॥

स्थापयेत् कारयेच्चैव भावनां दशधा नरः ।
ततः संशोष्य चूर्णानि तानि संमर्द्य यत्नतः ।।३।।
ग्राह्यं तैलं ततः शुद्धं गालनेन विधाय च ।
मूर्च्छयेत् पारदं तेन तैलेन विधिवत्ततः ।।४।।

इसी प्रकार से इसे दश बार भिंगोकर सुखाये और चूर्णित कर विधिवत् मसल डालें । तदनन्तर इसे निष्पीड़क यंत्र (कोल्हू आदि ऐसा यंत्र जिसमें गन्ने को पेरकर उसका रस निकाला जाता है) के द्वारा इसके तैल को निकाल लें । इसी तैल के प्रयोग से पारद की मूर्च्छना करें ॥३-४॥

एकविंशतिरात्रेण स्पर्शवेधी भवेद्रसः ।
लोहान् सर्वांश्च तेनैव वेधयेत् स्पर्शमात्रतः ।।५।।
अनेनेव प्रयोगेण स्पर्शवेध्यभ्रकं भवेत् ।
इन्द्रवारुणिबीजानि चूर्णयित्वा विधानतः ।।६।।

इस प्रकार का पारा इक्कीस रात्रि में स्पर्शवेधी गुण से सम्पन्न हो जाता है । इसी पारद के द्वारा सभी प्रकार के लौह धातुओं का वेधन करना चाहिए । उक्त प्रयोग के द्वारा अभ्रक भी स्पर्शवेधी बनता है । पहले इन्द्रवारुणी के बीज का विधिवत् चूर्ण बना लें, ॥५-६॥

पलाशबीजतैलेन भावयेच्च पुनः पुनः ।
ततो यन्त्रेण निष्पीड्य पूर्ववत्तैलमाहरेत् ।।७।।
तैलस्यास्यैकभागश्च पूर्वतैलस्य भागवत् ।
संमिश्र्याथात्र सूतायस्कान्तयोर्भस्म योजयेत् ।।८।।

पुनः उसे पलाश-बीज के तैल में बारम्बार भिंगोकर यंत्र द्वारा उसके तैल को निकाल लें । अब पूर्व तैल के भाग की तरह इस तैल में एक भाग पारद तथा कान्तलौह की भस्म मिला दें ॥७-८॥

भस्मनोरनयोश्चापि चत्वारीह पलानि च ।
एवं संयोजितादस्मादौषधादर्धकर्षकम् ।।९।।
कर्षं वा भोजयेद्दोषवयः प्रकृतिविद्भिषक ।
द्वित्रिमासप्रयोगेण स्याद् बली मांसलः शुभः ।।१०।।

इति कटुतुम्बीकल्पः सम्पूर्णम् ।

इन दोनों भस्मों को चार-चार पल के परिमाण में एकत्रित कर लें । तदनन्तर इस समन्वित औषध से एक कर्ष या आधा कर्ष की मात्रा को लेकर आयु तथा प्रकृति के बलाबल का विचार कर इसका सेवन चिकित्सक को कराना चाहिए । दो-तीन मास तक इसके सेवन से मनुष्य हृष्ट-पुष्ट, मांसल शरीर वाला तथा शक्तिशाली बन जाता है ।।९-१०।।

इसके प्रयोग-काल में निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण तथा जाप करना आवश्यक होता है ।

ॐ नमो भगवति क्षीरकञ्चुकि सर्वकामार्थसाधिनि तिष्ठ तिष्ठ स्वाहा ।

इस प्रकार कटुतुम्बीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

✲

अथ इलियालेपकल्पः

एरण्डसदृशैः पत्रैः फलैश्चैव तु तादृशैः ।
अजाङ्गलायां वृक्षः स क्षुद्रः सञ्जायते भुवि ।।१।।
इलियालेप इत्येवं शास्त्रज्ञैरेव कथ्यते ।
कट्वेरण्ड इति प्रायः ख्यातो नामान्तरेण च ।।२।।

यह एरण्ड (रेंड) पत्र तथा उसके फल के समान होता है । इसका वृक्ष अजांगल वृक्षों से छोटा होता है । इसे शास्त्रज्ञ पुरुष इलियालेप नाम से संबोधित करते हैं । इसके अतिरिक्त यह कटु-एरण्ड नाम से भी प्रायः जाना जाता है ।।१-२।।

रसेन तस्य पत्राणां पारदं चाभ्रकं तथा ।
एकत्र मर्दयेद्देवि पिष्टं भवति तत्क्षणात् ।।३।।
पुनश्च मर्दयेदेवं सूतःसम्बध्यते ध्रुवम् ।
तस्य कन्दं समादाय गृहीत्वा स्वरसं ततः ।।४।।

इसके पत्ते के रस से पारा तथा अभ्रक को एक साथ मिलाकर मसलने पर वह शीघ्र ही पिष्ट हो जाता है ।

पुनः इसी भाँति मर्दन करने पर पारद एकाकार होकर निश्चय ही बँध जाता है । इसके कन्द को लेकर उसका रस निचोड़ लेवें ।।३-४।।

कृष्णाखण्डानि तस्मिंश्च पाचयेद् याममात्रतः ।
यामैकं माहिषैः क्षीरैश्छायायां शोषयेत्ततः ।।५।।
कर्षैकं भक्षयेन्नित्यं क्षुत्पिपासाहरं भवेत् ।
सिद्धयोगमिदं ख्यातं पुरा नागार्जुनोदितम् ।।६।।

इति इलियालेपकल्पः सम्पूर्णम् ।

तत्पश्चात् उसमें पिप्पली (छोटी पीपर) के टुकड़ों को डालकर एक महीने तक पकाने के बाद उसे पुनः भैंस के दूध में पका लें । इसके पश्चात् उसे छाया में सुखाकर रख लें । इस चूर्ण का प्रयोग एक कर्ष की मात्रा में करने पर क्षुधा एवं पिपासा का निवारण होता है । यह सिद्धयोग के नाम से प्रख्यात है । पूर्वकाल में इसका कथन नागार्जुन ने किया था ।।५-६।।

उक्त कल्प की सफलता के निमित्त निम्न मंत्र का प्रयोग करें—

मन्त्रः– ॐ नमो भगवतेऽमृतार्णवमध्यसंस्थिताय मम शरीरेऽमृतं कुरु स्वाहा ।।

इस प्रकार इलियालेपकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

❁

अथ निम्बकल्पः

अङ्गानि पञ्च निम्बस्य यथाकालं समाहरेत् ।
छायायां शोषयेच्चाथ सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ।।१।।
क्वाथेन खदिरस्यापि भावयेद्वारपञ्चकम् ।
चित्रकं च विडङ्गं च व्याधिघातकरञ्जकौ ।।२।।

निम्ब के पंचांग को उपयुक्त समय में लेकर उसे छाया में सुखा डालें और उसका महीन चूर्ण बना लें । इस चूर्ण को खदिर (खैर) के काढ़े में पाँच बार भिंगों दें । पुनः चित्रक, विडंग (भागीरंग), व्याधिघात (अमलतास), करंज, ॥१-२॥

भल्लातकहरीतक्यौ धात्रीगोक्षुरकौ तथा ।
कासमर्दकबीजानि पिप्पल्यो मरिचानि च ।।३।।
द्वे हरिद्रे लोहचूर्णसंयुतौ तत्प्रमाणतः ।
भावयेद् भृङ्गराजस्य पञ्चनिम्बस्य तान् रसैः ।।४।।

भल्लातक (भिलावाँ), हरीतकी (हरड़), धात्री (आँवला), गोक्षुर (गोखरू), कासमर्द (चँकवड़ का पौधा) के बीज, पिप्पली (छोटी पीपर), कालीमिर्च, दोनों प्रकार की हरिद्रा (हलदी एवं दारुहलदी)— इन सभी के बराबर लौह-भस्म मिलावें । अब इन्हें भृंगराज (भँगरैया) एवं पंचनिम्ब के रस में भिंगो दें ॥३-४॥

विडालपदमात्रं तु पयसालोड्य कारयेत् ।
वटिकास्तास्ततः प्रातः शुद्धकोष्ठे भजेज्जलैः ।।५।।
तक्षणादौषधं चैतज्जीर्यत्यत्र न संशयः ।
न किञ्चित्परिहारोऽस्ति भोजनं सर्वमाहरेत् ।।६।।

उक्त वस्तुओं को दूध में मंथन कर एक कर्ष के बराबर की गुटिका बना डालें । इस वटी का प्रातःकाल शौचादि कर्म से निवृत्त होकर सेवन करना चाहिए ।

यह औषधि निःसन्देह रूप से उसी समय जीर्ण हो जाती है । इसके सेवन-काल में पथ्यापथ्य का कोई निषेध नहीं है अर्थात् सभी प्रकार का भोज्य पदार्थ लिया जा सकता है ॥५-६॥

द्वित्रिमासप्रयोगेण जायते वीर्यवान्नरः ।
कुष्ठमष्टादशविधं सप्तसप्ताहैर्नाशयेदिदम् ।।७।।

इसे दो-तीन मास तक सतत प्रयोग करते रहने पर मनुष्य वीर्यशाली हो जाता है तथा सात सप्ताह तक सेवन किये जाने पर अठारह प्रकार के कोढ़रोग का विनाश हो जाता है ॥७॥

वातगुल्मं च पलितं व्याधीन् सर्वान् विशेषतः ।
हन्ति मेहानशेषांश्च नाशयेच्चक्षुरामयान् ॥८॥
शतवर्षाधिकं जीवेज्जरया च विवर्जितः ।
सत्यं सत्यं महावीर्यं पञ्चनिम्बरसायनम् ॥९॥

इति निम्बकल्पः सम्पूर्णम् ।

इसके सेवन से वातगुल्म (पेट का वायुगोला), पलित (केशों की श्वेतता) तथा प्रमेह (धातुक्षीणता) आदि सभी रोगों का नाश हो जाता है। इसका प्रयोग नेत्र रोगों में भी लाभकारी सिद्ध होता है ।

इसका औषधसेवी वृद्धावस्था से मुक्त होकर शतायु बन जाता है । यह पंचनिम्ब रसायन अत्यन्त वीर्यवर्धक है । यह बात निश्चित रूप से अटल सत्य है ॥८-९॥

इस प्रकार निम्बकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ तृणज्योतिष्कल्पः

तृणं तैजसमेकं तु विद्यते विबुधेश्वरि ! ।
रात्रौ प्रज्वलते तत्तु हिरण्यसदृशं भवेत् ।।१।।
तस्य मूलं समादाय क्षीरेण सह पेषयेत् ।
क्षणात्तद् रक्तवर्णं स्यात्तत्क्षीरं च पिबेन्नरः ।।२।।

शिवजी ने पार्वती से कहा— दे देवि ! इस भूतल पर तेजोमय एक विशेष प्रकार का तृण पाया जाता है । यह तृण विशेष रात्रि में प्रकाशित होकर स्वर्ण की भाँति चमकता है ।

इस तृण की जड़ को दूध के साथ पीसने पर वह रक्तवणीय हो जाता है । मनुष्य को इस दुग्ध का पान करना चाहिए ॥१-२॥

सप्तरात्रप्रयोगेण बलं विन्दत्यनुत्तमम् ।
क्षीरेण नियताहारो लवणाम्लौ च वर्जयेत् ।।३।।
वृषभांशो महाकायो जीवेद्वर्षशतं नरः ।
तस्य मूलं समानीय रसगन्धौ व तत्समौ ।।४।।
निक्षिप्य मातुलुङ्गोत्थै रसैः सर्वं विमर्दयेत् ।

इसका पान सात दिनों तक करने वाला श्रेष्ठ बलवान बन जाता है। इसके प्रयोग-काल में निरन्तर दुग्धाहार ग्रहण करते हुए नमक तथा खट्टे पदार्थों का वर्जन करना चाहिए । इसके प्रयोग से मानव वृषभ-स्कन्ध (बैल के समान उन्नत कंधों वाला), विशालकाय एवं शतायु बन जाता है ।

इस औषधि की जड़ को लेकर उसके बराबर भाग में पारा और गंधक मिलाकर मातुलुंग (बिजौरा नीबू) के रस से मर्दित करें ॥३-४॥

बिल्वपत्रैश्च संवेष्ट्य दापयेच्च पुटत्रयम् ।।५।।
हेमच्छायं महावीर्यं रसायनमथोद्भवेत् ।
महिषीनवनीतेन तस्य मूलानि पेषयेत् ।।६।।

पुनः उसे बेलपत्र से लपेटकर तीन बार आँच देवें । यह रसायन स्वर्ण-सदृश दीप्तिवान तथा अत्यन्त बलकारक होता है । इसके मूल को भैंस के दूध द्वारा निकाले गये मक्खन से पीस डालें ॥५-६॥

कपिलाज्यप्रदीपस्य चोर्ध्वं नरकपालके ।
कज्जलं कारयेत्तच्च धारयेदष्टमीतिथौ ।।७।।
पूजां कृत्वा विधानेन शुचिर्भूत्वा च साधकः ।
तेनैवाञ्जितनेत्रस्तु सोऽदृश्यो जायते पुमान् ।।८।।

इति तृणज्योतिकल्पः सम्पूर्णम् ।

कपिला गाय के घी का दीपक जलाकर मनुष्य की खोपड़ी में काजल तैयार कर उसे अष्टमी तिथि में प्रयोग करें । जो साधक विधिवत् पूजनोपरांत उस कज्जल का प्रयोग शुचितापूर्वक नेत्रों में करता है वह अन्तर्धान हो जाता है ॥७-८॥

इस प्रकार तृणज्योतिकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

✻

अथ श्वेताकल्पः

पुष्यर्क्षेऽङ्गानि पञ्चापि श्वेतार्कस्याहरेद् बुधः ।
चूर्णयेदथ तच्चूर्णं मध्वाज्याभ्यां च भक्षयेत् ।।१।।
पुष्टिं तुष्टिं च मासेन याति वीर्यं विवर्धते ।
अङ्गानि पञ्च संगृह्य छायायां शोषयेत्ततः ।।२।।

पुष्य नक्षत्र में श्वेतार्क (सफेद मदार) का पंचांग ग्रहण कर उसका चूर्ण बना लें । उस चूर्ण को घी तथा मधु मिलाकर सेवन करें । एक मास तक इसका सेवन करना पुष्टिकारक, तुष्टिकारक तथा वीर्यवर्धक होता है । सफेद मदार के पौधे का पंचांग लेकर छाया में सुखावें और उसका चूर्ण बना लें।।१-२।।

चूर्णीकृत्य ततो दुग्धैर्भावयेद्गव्यमाहिषैः ।
पञ्चधैव कृते तद्धि जायते चोत्तमौषधम् ।।३।।
जीर्णान्ते भोजयेत्तच्च क्षीरैः षष्टिकभुङ् नरः ।
वर्जयेत्तैलमात्रं तु मासमेव च सेवयेत् ।।४।।

इस चूर्ण को गाय या भैंस के दूध में भिंगों देवें । इस प्रकार पाँच बार भावित करने की क्रिया से यह श्रेष्ठ औषध तैयार हो जाता है ।

औषण के जीर्ण हो जाने पर इसे साँठी के चावल और दूध से प्रयोग करें । इस प्रकार नियमित रूप से एक मास तक इसका सेवन करें । औषध सेवन-काल में तैलादि पदार्थों का ग्रहण करना वर्जित है ।।३-४।।

रक्तस्य मेदसश्चापि मांसस्यापि विवर्धकम् ।
मतिं धृतिं च मेधां च वर्धयेद्वार्धकापहम् ।।५।।
अर्कस्येवास्य कान्तिश्च देहे समुपजायते ।
कटवम्लतैलवर्जं च भक्षयेदन्नमन्वहम् ।।६।।
अनेनैव विधानेन कार्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।

इति श्वेताकल्पः सम्पूर्णम् ।

इसके सेवन के फलस्वरूप शरीर में रक्त, मेद तथा मांस की वृद्धि होती है । यह बुद्धि, धैर्य, मेधावर्धक तथा वृद्धावस्था को भी दूर करता है । इस औषधसेवी के शरीर में सूर्य के समान दीप्ति आ जाती है ।

इस औषध की गुणवत्ता प्राप्त करने के निमित्त इसके प्रयोक्ता को कड़ुआ, खट्टा तथा तैलादि निर्मित पदार्थों का परित्याग कर देना आवश्यक है ।।५-६।।

इस प्रकार श्वेताकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ भूकदम्बकल्पः

भूकदम्बस्त्रिधा प्रोक्तः शुक्लो रक्तोऽसितस्तथा ।
पुष्यर्क्षे च सिते पक्षे समूलं पल्लवान्वितम् ।।१।।
गृहीत्वा शोषयित्वा च छायायां चूर्णयेत्ततः ।
सुदिने शुभनक्षत्रे सर्पिषां सह भक्षयेत् ।।२।।

भूकदम्ब तीन प्रकार का होता है, जैसे— श्वेत, रक्त तथा कृष्ण इसके मूल और पत्तों को शुक्लपक्षीय पुष्य नक्षत्र में लेकर उसे छाया में सु लें और पुनः इसका चूर्ण बना लें। किसी शुभ मुहूर्त में घृत के अनुपान इसका सेवन करना चाहिए ॥१-२॥

जीर्णान्ते चाथ भुञ्जीत क्षीरान्नं नियतेन्द्रियः ।
षण्मासयोगतो याति बली मुक्ताखिलामयः ।।३।।
घृतेन मधुना युक्तं सर्वव्याधीन् विनाशयेत् ।
सर्पिषैव प्रयुक्तं चेत् पक्षेणान्त्रामयान् हरेत् ।।४।।

इसके जीर्ण होने पर इंद्रिय-निग्रहण के साथ दुग्धनिर्मित अन्न का केवल आहार ग्रहण करें। इस प्रकार छह महीने तक प्रयोगोपरान्त मनु दुःसाध्य रोगों से भी मुक्त हो जाता है। पन्द्रह दिनों तक घी के साथ प्रय करने पर आंत्रिक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥३-४॥

वातं काञ्जिकसंयुक्ते पित्तं जलसमन्विते ।
जलोदरं च तक्रेण गुल्मं दध्ना प्रयोजिते ।।५।।
कुष्ठं मध्वाज्यसंयुक्ते पयसा रक्तपित्तकम् ।
भूकदम्बस्य गुणाः श्लाघ्या एवं सुरेश्वरि ! ।।६।।

शिवजी ने कहा— हे सुरेश्वरि ! इसे कांजी के साथ लेने से वातरो जल के साथ पित्तज रोज, मट्ठे के द्वारा जलोदर, दही के साथ गुल्म, और घृत के साथ प्रयोग करने पर कुष्ठरोग तथा दूध के अनुपान द्वारा रक्त रोग का शमन होता है। अतः इसके असीम गुण कहे गये हैं ॥५-६॥

इसके सेवन-काल में निम्नलिखित मंत्र का जाप करना अनि है। मंत्र इस प्रकार से है —

"ॐ अमृतोद्भवाय अमृतं मे कुरु ठः ठः स्वाहा ।"

इति भूकदम्बकल्पः सम्पूर्णम् ।

इस प्रकार भूकदम्बकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हि व्याख्या समाप्त हुई ।

❋

अथ गन्धककल्पः

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा योगेन गन्धकम् ।
योगेषु च बहुष्वेष योक्तुमर्हो महागुणः ।।१।।
क्षीराम्भोधौ पुरा देवि मथ्यमाने सुरासुरैः ।
उत्पन्नममृतं सारं दिव्यरूपं महाबलम् ।।२।।

शिवजी ने पार्वती से कहा — हे देवि ! मैं तुमसे गंधक के प्रयोगों तथा उसकी लाभकारी गुणवत्ता का वर्णन कर रहा हूँ । अतः तुम उसे सावधानीपूर्वक श्रवण करो ॥१-२॥

तस्य शोणितगन्धेन मोहिताः सर्वदेवताः ।
किट्टमेतत् सुधायाश्च बभूवाथास्य गन्धतः ।।३।।
गन्धकश्चेति विख्यातो जराव्याधिविनाशकः ।
पीतश्चैव तथा श्वेतः कृष्णवर्णस्तृतीयकः ।।४।।
आरक्तश्च चतुर्थः स्यादेवं भिन्नः स गन्धकः ।

इसके रक्तगंध से जब सभी देवगण चेतनाशून्य हो गये तब पुनः इसी के गंध से यह अमृत का मलरूप बन गया और जगत में गंधक के नाम से ख्यात हुआ । यह वार्धक्य तथा रोगों का विनाशक है ।

इसकी चार प्रजातियाँ कही गयी हैं, जैसे— पीला, सफेद, काला और लाल ।

वमनं रेचनं कृत्वा रसायनमथाचरेत् ।।५।।
शुभे मुहूर्ते नक्षत्रे चार्चयित्वा जगत्पतिम् ।
वक्ष्यमाणप्रयोगेण भक्षयेत् कानि कानि चित् ।।६।।

वमन तथा विरेचन के द्वारा कोष्ठशुद्धि कर लेने पर इस रसायन का सेवन करें । किसी शुभ मुहूर्त तथा शुभ नक्षत्र आने पर भगवान विष्णु का पूजन-अर्चन करके आगे कथित प्रयोगों में से किसी एक का उपयोग करना चाहिए ॥५-६॥

षष्टिकानि च धान्यानि यवगोधूमकावपि ।
बालकानि च मांसानि तित्तिरेश्छागलानि च ।।७।।
कृष्णमुद्गाश्च सर्पिश्च सिता क्षीरं तथैव च ।
एतान्येव सदा पथ्यान्यपथ्यानि विवर्जयेत् ।।८।।

साँठी धान्य, यव, गेहूँ, तित्तिर (तीतर पक्षी), नवीन बकरे का मांस, काला हिरन, घी, दूध तथा मिश्री— ये सभी पथ्याहार कहे गये हैं। अपथ्य वस्तु का ग्रहण करना निबिद्ध है ॥७-८॥

कटुतैलं कषायादितैलं काञ्जिकराजिके ।
लवणाम्लविपाकानि द्विदलानि विवर्जयेत् ।।९।।
कोद्रवान्नं कुलत्थश्च न पथ्यौ रसकर्मणि ।
यानाद्यारोहणं पानमायासांश्चापरांस्त्यजेत् ।।१०।।

इसके सेवन-काल में सरसों का तैल, बर्रै (कुसुंभ) का तैल, कांजी, राजिका (राई), नमकीन और खट्टे पदार्थ, दो फलों वाला अन्न, कोद्रव (कोंदो नामक अन्न विशेष) तथा कुलथी आदि सभी अपथ्य माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त तीव्र गति से अश्वारोहण, मदिरापान तथा थकान पैदा करने वाले कार्य रसायनसेवी को नहीं करने चाहिए ॥९-१०॥

ग्रहण-मंत्र – ''ॐ नमो भैरवाय अमृतसिद्धाय अमृतसन्धाय जातवेदेन देवेन्द्रेण अमृतत्वं कुरुष्व मां स्वाहा''– अनेन मन्त्रजपेन गन्धकं ग्राहयेत् ।

ऊपर लिखित मंत्र का जाप करते हुए गंधक का ग्रहण करना चाहिए।

भक्षण-मन्त्र:— **मन्त्रेणानेन संमन्त्र्य भक्षयेत्तु बलिं प्रिये !**

उक्त मंत्र से अभिमंत्रित करने के पश्चात् ही गंधक का भक्षण करना चाहिए ।

गन्धकं त्रिफलाचूर्णं भृङ्गराजं समांशकम् ।।११।।
संवत्सरं प्रयुञ्जीत दीर्घं प्रादुर्भवेद्वयः ।
गन्धकं त्रिफलाक्वाथैः कर्षार्धं प्रत्यहं भजेत् ।।१२।।

गन्धक, त्रिफला का चूर्ण और भृंगराज (भँगरैया) को बराबर भाग में लेकर एक कर्ष की मात्रा में सेवन के परिणामस्वरूप दीर्घ आयुष्य मिलता है ।

त्रिफला का काढ़ा बनाकर गंधक को आधा कर्ष की मात्रा में एक महीने तक पान करने से रक्तविकार तथा चर्मरोगों का नाश होता है ॥११-१२॥

रक्तदोषाः प्रणश्यन्ति त्वग्रोगाश्चापि मासतः ।
गन्धकस्त्रिफलायुक्तो घृतेन मधुनापि वा ।।१३।।
भक्षितो हि महारोगान् नाशयेन्नात्र संशयः ।
गन्धकं सूतकं चैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन हि ।।१४।।

त्रिफला में गन्धक को मिलाकर घी अथवा मधु के साथ प्रयोग करने पर महाव्याधियों का भी विनाश सम्भव होता है । गंधक और पारा को एक साथ मिलाकर निर्गुण्डी के रस से, ॥१३-१४॥

मर्दयेत्रिदिनं माषमात्रया कारयेद्वटीः ।
कुष्ठमष्टादशविधं विषं चापि हरेज्ज्वरम् ॥१५॥
गन्धतैलं गलत्कुष्ठं हन्ति लेपाच्च भक्षणात् ।
गन्धकं मर्दयेत् सम्यक् निर्गुण्डीलाङ्गलीजलैः ॥१६॥

उसे तीन दिन तक भली-भाँति घोंटकर उड़द के बराबर गुटिका बना डालें । इसके सेवन से अठारह प्रकार के कुष्ठ, विष तथा ज्वरादि दूर हो जाते है ।

गंधक तैल की मालिश करने तथा गंधक-भक्षण करने के फलस्वरूप गलित कुष्ठ (ऐसा कुष्ठ जिसमें चमड़े में गलन पैदा हो जाती है) भी नष्ट हो जाते हैं । पहले गंधक को निर्गुण्डी तथा लांगली के रस में अच्छी प्रकार से मर्दन करें ॥१५-१६॥

ततो रसं च तैरेव गन्धकेन च मर्दयेत् ।
नवनीतसमं तेन निक्षिपेन्मर्दयेत् पुनः ॥१७॥
ततः सर्वं च संभूय जायते वरपिष्टिका ।
पिष्टिकां तां ततो दद्यात् पुटे वैद्यः सकृल्लघौ ॥१८॥
स जायते भस्मसाच्च स रोगान् नाशयेद्बहून् ।

तत्पश्चात् उसमें पारा और गंधक मिश्रित कर पूर्व कथित बूटियों के रस से पुनः मर्दित करें । अब उसके बराबर परिमाण में मक्खन डालकर उसे अच्छी तरह से घोंटे । इस क्रिया से सभी वस्तुएं एक में समाविष्ट हो जाती है । इस पिष्टिका को एक बार लघुपुट में चिकित्सक को आँच दिखाकर फूँकना चाहिए । तदनन्तर वह भस्म का रूप ले लेता और अनेक प्रकार के रोगों का विनाश कर डालता है ॥१७-१८॥

तेनैव भस्मना हेमपत्राणि च विलेपयेत् ॥१९॥
पुटैस्त्रिभिर्भवेत् स्वर्णं मारितं नात्र संशयः ।
पुनर्नवान्वितं गन्धं त्रिविधं विषनाशनम् ॥२०॥

इस भस्म को स्वर्ण के पत्तरों पर लेपित कर तीन बार पुट दें तो वह स्वर्ण निश्चित ही मृत हो जाता है । गंधक में पुनर्नवा के मिश्रण से यह तीनों प्रकार के विषों का नाशक होता है ॥१९-२०॥

धात्रीरसेन संयुक्तमजीर्णं नाशयेद् ध्रुवम् ।
गुडेन सहितश्चैष प्रमेहं च विनाशयेत् ।।२१।।
रसेन सहितं गन्धं काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ।
समृदा वाससा सप्त कञ्चुकान् दापयेत्ततः ।।२२।।

धात्री (आँवला) के रस से इसका सेवन अजीर्ण (अपच) रोग का एवं गुड़ के साथ प्रमेह का विनाश करने में सफल सिद्ध होता है ।

पारद के साथ गंधक को मिलाकर काँच (शीशा) की मूषा में भरकर ऊपर से सात बार मिट्टी का लेप कर सुखा लेवें ॥२१-२२॥

शोषयित्वा घटस्यान्तः स्थापयेत् सिकतान्तरे ।
गाढाग्निना पचेद्यामदशकं जायते ततः ।।२३।।
सिन्दूराभं महद्वीर्यं रसायनमनुत्तमम् ।
तेन रोगा विनश्यन्ति विविधा जायते बलम् ।।२४।।

इति गन्धककल्पः सम्पूर्णम् ।

पुनः इसे बालू में रखकर बालुका-यंत्र में दश याम (३० घंटा) पर्यन्त तीव्र आँच दें । इस प्रक्रिया के द्वारा यह सिन्दूरी वर्ण का अत्यन्त वीर्योत्पादक श्रेष्ठ रसायन बनकर तैयार हो जाता है । इसके प्रयोग से विविध प्रकार के रोगों का शमन तथा बलवर्धन होता है ॥२३-२४॥

इस प्रकार गन्धककल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ देवदालीकल्पः

देवदालीरसं चापि द्विगुणं ग्राहयेद् घृतम् ।
धात्रीरसेन संयुक्तं पाचयेल्लोहभाजने ।।१।।
धात्र्याः शुष्केन्धनेनैव पाचयेल्लघुवह्निना ।
नस्ये पाने च युञ्जीत तद् घृतं प्रत्यहं द्विधा ।।२।।

घृत की मात्रा से दुगुनी मात्रा में देवदाली (तरोई) तथा आँवला का रस लेकर मिला लें । उसे किसी लोहे के बरतन में रखकर आँवले की सूखी लकड़ियों को जलाकर मन्द आँच पर पका लेवें । इस घृत के द्वारा दो बार प्रतिदिन पान करें तथा नाक से नस्य लें ॥१-२॥

क्षीरं क्षीरयुतं चान्नं पथ्यत्वेन प्रकीर्त्यते ।
अपस्मारः क्षयः कुष्ठं वातरोगोऽपि नश्यति ।।३।।
नस्यं तद् भूतरक्षांसि सप्तमासैर्वशं नयेत् ।
देवदालीरसः क्षौद्रं पारदस्तु दशांशत् ।।४।।

इसके लिए दुग्धपान तथा दुग्धमिश्रित अन्न पथ्याहार कहे गये हैं । इसके सेवन से अपस्मार (मृगी रोग), क्षण, कुष्ठ तथा वात-संबधी रोगों का निवारण होता है । लगातार सात महीने तक इस घृत के सूँघने से भूत-प्रेत तथा राक्षसादि भी वश में आ जाते हैं । देवदाली-रस, मधु तथा इसके दशांश भाग में पारद को, ॥३-४॥

एकत्र मर्दितः कार्यो वटकत्वेन मुद्गवत् ।
प्रदरे च तथान्येषु ऋतुशूलेषु योजयेत् ।।५।।
जननं च शिशोरस्य प्रयोगेण सुखं भवेत् ।
देवदालीरसं क्षौद्रं सर्पिरामलकीरसम् ।।६।।

एक साथ घोंटकर मूंग के बराबर की वटी बना लें । इस गोली को स्त्रियों के प्रदर तथा ऋतु-कालिक रजःस्राव के शूल में प्रयोग करना चाहिए । इसके प्रयोग से सुखपूर्वक सरलता से प्रसव हो जाता है । देवदाली का रस, मधु, घृत तथा आँवला का रस, ॥५-६॥

मृदित्वा भर्जितैर्मुद्गचूर्णैः सह दिनद्वयम् ।
भक्षयेत् कर्षमात्रं तु मतिर्वर्धेत धातुभिः ।।७।।
देवदाल्याः सुपत्राणि विधिना च समाहरेत् ।
पिष्ट्वा तु गुटिकां कृत्वा छायायां परिशोषयेत् ।।८।।

इस सब वस्तुओं को भुने हुए मूँग के चूर्ण के साथ दो दिनों तक लगातार घोंटकर एक कर्ष की मात्रा में सेवन करने पर धातुओं के सहित बुद्धि का भी विकास होता है । देवदाली के नरम पत्तों को लेकर उन्हें पीस डालें और छाया में शुष्कीकरण कर लें ॥७-८॥

प्रत्यूषे भक्षयेत् प्राज्ञः प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
वातगुल्मयकृत्प्लीहवृद्धयो यान्ति संक्षयम् ॥९॥
देवदाल्यास्तु पञ्चाङ्गं सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ।
तच्चूर्णं सर्पिषालोड्य यो भुङ्क्ते सप्तरात्रकम् ॥१०॥
सर्वानपि वशीकुर्यात् स्त्रीणां प्रियतमो भवेत् ।

इसे उषःकाल में शिवजी को वन्दना करके भक्षण करने वाले पुरुष के वातगुल्म, यकृत तथा प्लीहावृद्धि एवं अण्डकोश-वृद्धि (फोते का बढ़ना) आदि रोगों का विनाश हो जाता है ।

देवदाली का पंचांग ग्रहण कर उसका महीन चूर्ण बना लें । तदनन्तर इस चूर्ण को घृत मिलाकर सात रात्रि पर्यन्त प्रयोग करने वाला व्यक्ति समस्त लोगों को अपने वशवर्ती बना लेता और स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय हो जाता है ॥९-१०॥

देवदालीरसैस्तुल्यं श्वेतं निक्षिप्य सर्षपम् ॥११॥
लक्ष्मणामपि संयोज्य गुटिकां कारयेद् बुधः ।
कर्षार्धं भक्षयेन्नित्यं कासश्वासौ विनश्यतः ॥१२॥

देवदाली के रस में सफेद सरसों के दाने तथा लक्ष्मणा बूटी को मिलाकर गोली बना लेनी चाहिए । इसे प्रतिदिन आधा कर्ष परिमाण में भक्षण करने से कास (खाँसी) तथा श्वास (साँस फूलना, दमा) आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं ॥११-१२॥

शुक्लपक्षे पौर्णमास्यां पुष्ययुक्ते शुभे दिने ।
विधानेन बलिं दद्यात्तद्वनस्पतये ततः ॥१३॥
होमादींश्च विधायाथ नमस्कृत्वा जितेन्द्रियः ।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा देवदालीं समुद्धरेत् ॥१४॥

इसे पुष्य नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा तिथि में बलि का अर्पण करें । पुनः जितेन्द्रिय होकर हवनादिक कर्म सम्पन्न कर इस वनस्पति का प्रणामपूर्वक तीन बार प्रदक्षिणा कर मंत्रोच्चार करते हुए उत्पाटन करें ॥१३-१४॥

उत्पाटन मंत्र निम्न प्रकार से है —

"ॐ नमो भगवते ईश्वराय सोमसंभवाय देवदालिने स्वाहा । ॐ महेश्वराय हृदयम् । ॐ भूताधिपतये शिरोनेत्रे महाबलाय स्वाहा ।"

अस्य भक्षणमन्त्रः– "ॐ देवप्रयत्नेन निर्विघ्नं जायते । तेजोमालि विद्वेषान् जहि स्वाहा ।"

उक्त लिखित मंत्रोच्चारण कर भक्षण करना चाहिए ।

नेत्रमन्त्रः– "ॐ नमो भगवति महावीरे ईशाने अमृतसंभ सर्वभूतवशंकर्यै स्वाहा ।" ॐ देवदालिन् सर्वभूत[illegible]द्धिहृदयं भव ।

मूलमन्त्रः– "मां रं ॐ महाबले सर्वभूतसंनाशिनि हुँ फट् स्वाहा ।

देवदाली महावीर्यः सर्वशत्रुविनाशनः ।
महौषधे सिद्धिदा त्वं गङ्गावत्पापनाशिनि ।।१५।।

देवदाली अमोघ वीर्यशालिनी है, समस्त शत्रुओं की संहारिणी है। महौषधे ! तुम सिद्धिदात्री तथा गंगा के समान पाप-पुंजविनाशिनी होओ ॥१५

अमृतगमने मां रक्ष स्वाहा कवचम् ।
देवदालीमहाभूताधिपतये ॐ नमः स्वाहा ।
सदा चानेन मन्त्रेण चोद्धरेत् प्रयतः शुचिः ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा नियमेनोद्धरेत् स्थितः ।।१६।।

देवदाली का उत्पाटन शुद्धतापूर्वक एकाग्रमन से सदैव उत्तराभिमु अथवा पूर्वाभिमुख होकर उक्त मंत्र—**'देवदाली-महाभूताधिपतये ॐ न स्वाहा'** बोलते हुए करना चाहिए ॥१६॥

उलूखले क्षालिते च मर्दयित्वा हरेद्रसम् ।
पयसा भाजने लौहे पाचयेच्च तुषाग्निना ।।१७।।
वमनं रेचनं कृत्वा शुक्लपक्षे शुभे दिने ।
पिबेन्मासं भवेत्तेन वृद्धिरग्नेर्बलस्य च ।।१८।।

जल से प्रक्षालित ओखली में देवदाली को मसलकर रस निकाल उसे लोहे के पात्र में दूध डालकर भूसी की आग पर पका लेवें । शुक्लपक्ष शुभ मुहूर्त में वमन-विरेचन के द्वारा आँतों को स्वच्छ कर एक महीने इसके सेवन करने से जठराग्नि प्रज्वलित हो जाती है ॥१७-१८॥

देवदालीसर्षपौ च बिडालपदमात्रतः ।
औदुम्बरजलैर्भोज्यौ गुल्मप्लीहभगन्दराः ।।१९।।
कामलापाण्डुरोगाद्या विनश्यन्ति विशेषतः ।
अस्य चूर्णं तु संगृह्य वाजिगन्धासमन्वितम् ।।२०।।

सर्पिषा भक्षयेन्नित्यं वाजीकरणमुत्तमम् ।
ओषध्या देवदाल्यास्तु गुणा एवं प्रकीर्तिताः ।।२१।।

इति देवदालीकल्पःसम्पूर्णम् ।

देवदाली तथा सर्षप (सरसों) को गूलर के जल से एक कर्ष के
ण में भक्षण करने से गुल्म (गाँठ), प्लीहा (तिल्ली), भगन्दर (एक
का गुदा रोग), कामला (Jaundice) तथा पांडुरोगों का शमन हो
है ।

इसके चूर्ण के साथ अश्वगंधा चूर्ण मिलाकर घी के साथ नित्यप्रति
करने से वीर्य-स्तम्भन होता है ।

इस प्रकार से देवदाली की गुणवत्ता पर प्रकाश डाला गया है ॥१९-२१॥

इस प्रकार देवदालीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी
या समाप्त हुई ।

अथ एरण्डकल्पः

एरण्डकल्पस्त्वत्यन्तमुत्तमः शंकरो नृणाम् ।
चतुर्विधश्च स ज्ञेयो रक्तपीतादिभेदतः ।।१।।
तत्तैलं वासरे भानोर्ग्राहयेद्विधिवत्ततः ।
रक्तैरण्डकतैलेन शुद्धसूतकगन्धकैः ।।२।।

मनुष्यों के हितार्थ एरण्डकल्प अतीव उत्तम एवं लाभप्रद माना जा[ता] है । रक्त, पीतादि भेदानुसार इसकी चार प्रजातियाँ पायी जाती हैं ।

रविवार के दिन इसके तैल को विधिवत् ग्रहण कर लें । तदनन[्तर] रक्त एरण्ड तैल को शुद्ध पारा और गंधक, ॥१-२॥

पूरयित्वा लोहपात्रं पचेन्मृद्वग्निना भिषक् ।
याममात्रेण तत्सर्वं भवेद् गुञ्जानिभं ध्रुवम् ।।३।।
तत्तारनागताम्रेषु दशांशेन च वेधयेत् ।
तत्तैलं मधुना युक्तं गन्धकेन समन्वितम् ।।४।।

मिलाकर लोहे के बरतन में भर दें और उसे मन्द आँच पर रख [कर] पकावें । एक प्रहर (३ घंटा) में ही यह निश्चित रूप से गुंजा (घुंघची) [के] समान हो जाता है । यह चाँदी, नाग (सीसा) और ताँबे का अपने दशां[श] भाग से ही वेधन कर डालता है । उसके तैल को मधु तथा गन्ध[क] मिलाकर,॥३-४॥

भुवि मासं विनिक्षिप्य ततश्चोद्धृत्य बुद्धिमान् ।
प्रातर्निष्कं तु विलिहेत् तदर्धं चाह्नि निश्यपि ।।५।।
तरुणादित्यसंकाशो भवेन्मासप्रयोगतः ।
शुद्धकोष्ठः प्रकुर्वीत गुरुवन्दनमादितः ।।६।।
औषध चाथ भुञ्जीत क्षीराहारो जितेन्द्रियः ।

एक महीने तक भूमि के अन्दर स्थापित कर दें । उसे मासोपर[ान्त] भूमि से बाहर निकालकर प्रातःकाल एक निष्क तथा मध्याह्न और रात्रि [में] आधा निष्क की मात्रा में प्रयोग करें । इसके एक मास तक सेवन करने [के] पश्चात् मानव बालकालीन सूर्य के सदृश जाज्वल्यमान हो उठता है ।

सर्वप्रथम अंत्र-शुद्धि करके गुरु का वंदन करना चाहिए । तत्प[श्चात्] इंद्रियनिग्रहणपूर्वक दुग्धाहार ग्रहण करते हुए औषध का सेवन करें ॥५–[६]॥

मासद्वयप्रयोगेण बलमायुश्च विन्दति ।।७।।
कृष्णैरण्डकतैलं तु कृष्णागोक्षीरसंयुतम् ।
शुद्धकोष्ठः पिबेत् सद्यः कर्षद्वयमितं कृशः ।।८।।
ब्राह्मीरसेन च तथा पुष्टिं मासेन विन्दति ।

इसे दो मास तक सेवन कर लेने पर औषधसेवी बलवान तथा आयुष्यमान् हो जाता है ।

काले एरण्डतैल को काली गौ के दूध से अथवा ब्राह्मीरस का पान कर अंत्रशुद्धि के पश्चात् दो कर्ष के परिमाण में शीघ्र ही पान कर ले तो निर्बल व्यक्ति भी हृष्ट-पुष्ट बन जाता है ॥७-८॥

श्वेतैरण्डस्य मूलं तु गृहीत्वा पुष्यतारके ॥९॥
सकर्पूरं घृतं तेन सक्षीरं च विपाचयेत् ।
अञ्जयेन्नेत्रयुगलं नश्यन्त्यक्षिगतामयाः ॥१०॥
सिद्धाञ्जनमिदं सिद्धं कामलामपि नाशयेत् ।

सफेद अण्डी (एरण्ड) की जड़ को पुष्य नक्षत्र में लेकर घी और कपूर मिलाकर पका डालें । उस घृत को दोनों नेत्रों में अंजन की भाँति लगाने से सभी नेत्र रोगों का विनाश होता है । इसे सिद्धांजन के नाम से कहा जाता है । यह घृत कामला (पीलिया) रोग के लिए भी गुणकारी है ॥९-१०॥

तन्मूलं चापि पाषाणशुद्धसूतसमन्वितम् ॥११॥
शिलाचन्द्रवसायुक्तं धमेदन्धाख्यमूषके ।
शाल्मलीखदिराङ्गारैः क्रियाबद्धं भवत्यलम् ॥१२॥

एरण्डमूल, पाषाण, शुद्ध पारा के साथ शिला, चन्द्र तथा वसा (चर्बी) मिलाकर अंधमूषा नामक यंत्र द्वारा उसे जला दें । इसके लिए शाल्मलि (सेमल) तथा खदिर काष्ठ (खैर) की आग पर इसे जला कर क्रियाबद्ध कर लें ॥११-१२॥

तद् वङ्गेषु द्रुतं क्षिप्तं सहस्रांशेन वेधयेत् ।
श्वेतगोक्षीरसंयुक्तं तन्मूलं निष्कमात्रकम् ॥१३॥
लिहेद्गोघृतमिश्रं वा क्षीराशी विजितेन्द्रियः ।
मासैकस्य प्रयोगेण चन्द्रवन्निर्मलो भवेत् ॥१४॥

इसके हजारवें भाग को वंग (राँगा) में मिला देने पर यह शीघ्र ही वेधन कर देता है ।

इसे सफेद गाय के दूध अथवा गोघृत और मिश्री के साथ एरण्ड मूल को एक निष्क परिमाण में दूध के साथ खायें तथा इंन्द्रियों का निग्रह करें तो एक मास के सेवन से चंद्रमा के समान वह व्यक्ति निर्मल बन जाता है ॥१३-१४॥

मासद्वयप्रयोगेण बलवान्नात्र संशयः ।
मासत्रयप्रयोगेण दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१५॥
पीतैरण्डस्य मूलं तु ग्राहयेदर्कवासरे ।
छायाशुष्कं ततः कृत्वा नवनीतेन पेषयेत् ॥१६॥

इसका सेवनकर्ता दो महीने में बलवान तथा तीन मास में दीर्घजीवी हो जाता है ।

रविवार के दिन पीले रंग के एरण्ड की जड़ को उखाड़ कर उसे छाया में सुखा लेवें । पुनः मक्खन मिलाकर उसे पीस डालें ॥१५-१६॥

त्रिकटुत्रिफलायुक्तं सितया मधुनान्वितम् ।
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य शीतलायां भुवि क्षिपेत् ।।१७।।
मासादुद्धृत्य तद् द्रव्यं लिहेन्निष्कप्रमाणतः ।
निवातशायी क्षीराशी तिष्ठेदम्लानमानसः ।।१८।।

त्रिकटु (सोंठ,कालीमिर्च, पीपर), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), मिश्री तथा शहद मिलाकर उसे किसी चिकने बरतन में भरकर आर्द्र भूमि के अन्दर रख छोड़ें ।

एक महीने के पश्चात् उसे भूमि से बाहर निकाल कर एक निष्क की मात्रा में सेवन करें । इसके प्रयोग-काल में प्रयोक्ता को प्रफुल्लित चित्त से दूध का पान करते हुए वातरहित स्थान में शयन करना चाहिए ॥१७-१८॥

एकमासप्रयोगेण बली वृद्धोऽपि जायते ।
मासत्रयप्रयोगेण दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।।१९।।
मलग्रहः स्वयं याति विनाशं सर्वदेहिनाम् ।
अशीतिरामयाश्चापि वातजा यान्ति संक्षयम् ।।२०।।

इस प्रकार के प्रयोग से एक महीने में वृद्ध पुरुष भी युवा बन जाता है तथा तीन मास के सेवन से लम्बी आयु प्राप्त कर लेता है ।

इसके सेवन से कोष्ठबद्धता तथा अस्सी प्रकार के वातरोगों का शमन होता है ॥१९-२०॥

स्निग्धपुष्टसमस्ताङ्गः सुखी संधुक्षितानलः ।
जीवेज्जीवसमो बुद्ध्या बहुकालं नरो भुवि ।।२१।।

इति एरण्डकल्पः सम्पूर्णम् ।

इसके प्रयोक्ता के सर्वांग स्निग्ध (चिकनाहटयुक्त) तथा परिपुष्ट हो जाते हैं । वह प्रदीप्त क्षुधाग्नि वाला, बृहस्पति के समान बुद्धिमान होकर दीर्घकाल तक सुखमय जीवन व्यतीत करता है ॥२१॥

इस प्रकार एरण्डकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

❋

अथ मयूरशिखाकल्पः

ओषधीनां वरां ज्येष्ठां वर्णनीयां सुरैरपि ।
शृणु पार्वति यत्नेन सुराणां च सुखप्रदाम् ।।१।।
बहुप्रकाररूपां तामहमद्य ब्रवीमि ते ।
मूलावर्ता शिखारम्या सहदेवी कुमारिका ।।२।।

शिवजी ने कहा— हे पार्वति! देवताओं के लिए भी सुखदायिनी, औषधियों में सर्वोत्तम, प्रथमोत्पन्न,देवों द्वारा कथनीय मैं इस मयूरशिखाकल्प का कथन कर रहा हूँ जिसे तुम एकाग्रचित्त से सुनो । मैं आज तुमसे उसके अनेक प्रकारों तथा रूपों का भेद भी बतलाऊँगा ।

इसे भूतल पर साधकगण मूलावर्ता, शिखारम्या, सहदेवी, कुमारी, ।।१-२।।

मधुपर्णी केतकी च मालती विषहा स्मृता ।
गोरम्भा च समाख्याता सुभगा विशिखा स्मृता ।।३।।
एवं च साधकैरेषा नैकैर्नामभिरुच्यते ।
नाम्ना शिखिशिखेत्येव सर्वैराहूयते भुवि ।।४।।

मधुपर्णी, केतकी, मालती, विषहा, गोरम्भा, सुभगा एवं विशिखा नाम से संबोधित करते हैं । इसे सामान्यतया प्रायः सभी लोग शिखिशिखा (मयूरशिखा अर्थात् मोर की चोटी) के नाम से जानते हैं ।।३-४।।

संगृह्य पुष्यनक्षत्रे बालानां बन्धयेद् गले ।
ग्रहभूतपिशाचेभ्यः शाकिनीभ्यो हरेद्भयम् ।।५।।
धूपं भूतज्वरे दद्यात्तं तदेवोपशामयेत् ।
तस्या मूलं शिखायां च बद्ध्वा रात्रौ व्रजेद्बहिः ।।६।।
न भूतेभ्यो भुजङ्गेभ्यो नाप्याप्नोति भयं क्वचित् ।

इसे पुष्य नक्षत्र में लेकर बालकों के कण्ठ में बाँध देने से उन्हें बालग्रह, भूत-पिशाच, शाकिनी-डाकिनी आदि का भय नहीं रह जाता । भूत-ज्वर में इसका धूप दिखाने से जवर का शीघ्र ही शमन हो जाता है । इस मयूरशिखा की जड़ को अपनी शिखा में बाँधकर रात्रि में बहिर्गमन करने वाले को भूत-प्रेत तथा सर्पादि जीवों का भय उपस्थित नहीं होता ।।५-६।।

उच्चाटयेच्च तत्सूक्ष्मशाखया हि महाग्रहान् ।।७।।
हस्ते बद्ध्वा वृश्चिकस्य विषं वित्रासयेन्नरः ।
ताम्बूलेनाशितं तच्च मूषिकस्य विषं हरेत् ।।८।।

इसे सूक्ष्म शाखा में बाँधने से महाग्रहों का भी उच्चाटन होता है। हाथ में धारण करने से मानव बिच्छू के डंक से रहित हो जाता है। ताम्बूल के साथ इसे खाने से मूषक विष दूर हो जाता है ॥७-८॥

सर्पिषा मर्दितेनास्य नस्यं मूलेन दापयेत् ।
सर्पदष्टः सुखं याति द्वित्रैरेव क्षणैरपि ॥९॥

मयूरशिखा की जड़ को घी में घिसकर सर्पदंशित व्यक्ति को नस्य देने पर वह क्षण-भर में ही विष-प्रभाव से मुक्त हो जाता है।

उत्पाटन मन्त्रः–

"ॐ नमः खरमुखाय शक्तिहस्ताय यमपुरवाहनाय कर्मदक्षाय ओषधिराजाय ठः ठ स्वाहा ।"

अनेन मन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य कृष्णचतुर्दशीयामिन्यां शुचिर्भूत्वा मयूरशिखामुत्पाटयेत् ।

उपर्युक्त मंत्र— "ॐ नमः खरमुखाय शक्तिहस्ताय यमपुरवाहनाय कर्मदक्षाय ओषधिराजाय ठः ठः स्वाहा"— द्वारा सात बार अभिमंत्रण करके कृष्णपक्षीय चतुर्दशी तिथि की रात में शुद्धतापूर्वक इसे उखाड़ना चाहिए।

एवं सा संगृहीता स्यात् सुप्रभावसमन्विता ।
ततः समूलां तां सम्यगातपे शोषयेन्मृदौ ॥१०॥

इस विधि द्वारा संगृहीत मयूरशिखा उत्तम प्रभावकारी होती है। मयूरशिखा को उखाड़ने के पश्चात् उसे जड़सहित हल्की धूप में सुखा लेना चाहिए ॥९-१०॥

चूर्णयित्वा सुसूक्ष्मं तच्चूर्णं च मधुना भजेत् ।
त्रिकर्षमात्रया नित्यं सत्यं स्यात् सुमहद्बलम् ॥११॥
मधुना च घृतेनापि कुर्यात्तदवलेहकम् ।
शाणमात्रं ततः खादेन्मासेन स्यान्महद्बलम् ॥१२॥

इसके महीन चूर्ण को तीन कर्ष की मात्रा में प्रतिदिन मधु के साथ खाने से बलवर्धन होता है।

इसे मधु और घृत के साथ मिलाकर अवलेह के रूप में चाटने योग्य बना लें। इस अवलेह को एक शाण की मात्रा में भक्षण करने से बल की वृद्धि होती है ॥११-१२॥

पचेन्मयूरशिखया तैलं सक्षीरमम्भसा ।
तदभ्यक्तं केशदोषान् पलितादीनपोहयेत् ॥१३॥

सूर्यावर्तं तथान्यांश्च शिरोरोगान् हरेदिदम् ।
तार्क्ष्यस्याक्षीव नेत्रं व सुसूक्ष्मग्राहि जायते ।।१४।।

मयूरशिखा के रस में दूध डालकर आग पर पकावें । उस तैल की शरीर पर मालिश करने से पलितादिक रोग विनष्ट हो जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त सूर्यावर्त (अधकपारी सिरदर्द जो सूर्योदय काल से प्रारम्भ होकर सूर्यास्त होने तक बना रहता है) तथा अन्य प्रकार के शिरोरोग दूर हो जाते हैं । नेत्रों की ज्योति गरुड़ पक्षी के समान प्रखर हो जाती है।।१३-१४।।

त्रिःसप्तदिवसैरास्यं स्यात् सुवर्णसमप्रभम् ।
निषिक्तं श्रोत्रयोः कुर्याच्छब्दग्राहं नृणां सदा ।।१५।।
हेमक्षीर्या रसैर्मर्द्या मयूरस्य शिखा भृशम् ।
ततस्तत्कल्कसंमिश्रं क्षीरं पेयं निशासु च ।।१६।।

इसके इक्कीस दिनों तक प्रयोग के पश्चात् मुखमंडल सूर्य के समान तेजोमय हो जाता है । इसे कानों में डालने से बधिरता का नाश होता है।

मयूरशिखा को स्वर्णक्षीरी (खिरनी) के रस में अच्छी प्रकार मसल डालें । तदनन्तर उसके कल्क से मिश्रित दुग्ध रात्रि में पीवें ।।१५-१६।।

वृष्यमत्युत्तमं विद्यान्मेदोमांसप्रवर्धकम् ।
वातरोगांश्च शमयेदशीतिं नात्र संशयः ।।१७।।
मूलं तु गिरिकर्ण्याश्च श्वेताया रविवासरे ।
उत्पाटयेद् भृङ्गराजं समूलं च सबीजकम् ।।१८।।

यह औषधि अत्यन्त बलकारक तथा मेद और मांसवर्धक है । इससे अस्सी प्रकार के सभी वातरोग नष्ट हो जाते हैं । श्वेत गिरिकर्णिका (अपराजिता) की जड़ को रविवार के दिन उखाड़ लें । तदुपरान्त इसके बीज तथा जड़ सहित भृंगराज (भँगरैया) को, ।।१७-१८।।

स्वात्यां तथा पञ्चमूलं कुमार्या मूलमेव च ।
श्वेतार्कस्य तथा मूलं ग्राहयेन्नियतो नरः ।।१९।।
संशोष्य सर्वमेकत्र चूर्णयेत् सूक्ष्मशो भिषक् ।
तेषां तुल्यं मयूरस्य शिखायाश्चूर्णमर्पयेत् ।।२०।।

स्वाति नक्षत्र आने पर ग्रहण करे । पुनः पंचमूल, कुमारीमूल तथा सफेद मदार की जड़ का ग्रहण कर इन्हें एक साथ शोषित कर बारीक चूर्ण कर लें एवं इन चूर्णों के सम भाग में मयूरशिखा के चूर्ण का संमिश्रण कर देवें ।।१९-२०।।

गुञ्जाचतुष्टयं तत्र मधुना पयसापि वा ।
प्रत्यहं भक्षयेत् प्रातः कट्वम्ललवणांस्त्यजेत् ।।२१।।
पक्षाभ्यां पक्षघाताद्यास्तीक्ष्णरोगास्तथापरे ।
यान्त्यामवातप्रमुखाः क्षयं नात्रास्ति संशयः ।।२२।।

इस चूर्ण को मधु या दुग्ध के साथ चार गुंजा (लगभग २ रत्ती) की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करें । इसके सेवन-काल में कड़ुवी, खट्टी तथा लवण रसप्रधान वस्तुओं का प्रयोग करना निषिद्ध है ।

इसके दो महीने तक लगातार प्रयोग करने के परिणामस्वरूप पक्षाघात (लकवा, Paralysis) तथा आमवात आदि तीक्ष्ण रोग भी निश्चित रूप से नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥२१-२२॥

चूर्णं च त्रिफलायास्तु निम्बपञ्चाङ्गचूर्णकम् ।
चूर्णं शिखिशिखायाश्च ग्राह्यं तुल्यप्रमाणतः ।।२३।।
भाण्डे घृताक्ते तत्सर्वं निक्षिपेदथ माक्षिकम् ।
भागद्वयं योजयेच्च शर्करापि समांशतः ।।२४।।

त्रिफला चूर्ण, नीम के पंचांग का चूर्ण तथा मयूरशिखा का चूर्ण सम भाग में लेकर किसी चिकने पात्र में रख दें । अब उसमें दुगुने भाग में मधु तथा बराबर की मात्रा में शर्करा का मिश्रण कर दें ॥२३-२४॥

धान्यमध्ये स्थापयेच्च भाण्डं पिहितवक्त्रकम् ।
त्रिपक्षान्ते ततः खादेत्कर्षं कर्षं नरोऽन्वहम् ।।२५।।
योजयेदनुपानेन गोक्षीरं चाज्यमेव वा ।
यथेष्टं भुज्यतां चान्नं दधिक्षीरघृतैः सह ।।२६।।

उस औषध-पात्र का मुख ढँककर अन्नराशि में रख छोड़ें । डेढ़ मास के बाद उसे निकालकर प्रतिदिन एक कर्ष की मात्रा में सेवन करना चाहिए। इसके साथ अनुपान के रूप में गाय का दूध या घृत लिया जा सकता है। दही, दूध तथा घृत के साथ अन्न का भरपूर आहार लेवें ॥२५-२६॥

नश्यन्त्यर्शांसि स भवेच्छुद्धकोष्ठः सदा नरः ।
ज्वरा यान्त्यन्तिकं नास्य कदाचिद्वातजादयः ।।२७।।
तुष्टिं पुष्टिं च भजते स नरः सर्वदा प्रिये ! ।
विमलानीन्द्रियाण्यस्य सकलानि भवन्ति च ।।२८।।

इसके प्रयोग के फलस्वरूप अर्श (गुदरोग, बवासीर) का क्षय होता है तथा किसी प्रकार की कब्जियत पेट में नहीं रहती । यह वातजनित ज्वर को नष्ट करने में भी सहायक होता है ।

हे प्रिये ! इसके सेवन से मनुष्यों में तुष्टि तथा पुष्टि आती है । उसकी समस्त इन्द्रियाँ स्वच्छ हो जाती हैं ॥२७-२८॥

रसेन काकजङ्घायाः सैन्धवेन च तां शिखाम् ।
मृदित्वा वटिकां कुर्याद् गुञ्जाफलसमां ततः ॥२९॥
दुष्टाः पुराणा नश्यन्ति मलाः कोष्ठे दिने दिने ।
गुल्ममानाहमुदरमजीर्णमपि हन्ति तत् ॥३०॥

मयूरशिखा को काकजंघा के रस तथा सेंधा नमक के साथ खूब मर्दन कर गुंजा (घुंघची, २ घुंघची १ रत्ती के बराबर) के परिमाण में वटी बना लेवें ।

इसके द्वारा आँतों में जमा हुआ पुराना मल निकल जाता है जिसके कारण गुल्म, आनाह (अफरा), उदर-सम्बन्धी रोग तथा अजीर्ण (अपच) का नाश हो जाता है ॥२९-३०॥

चूर्णं शिखिशिखायाश्च स्नुहीचूर्णचतुर्गुणम् ।
भोक्तव्यं गव्यतक्रेण पञ्चमाषप्रमाणतः ॥३१॥
पतन्ति क्रिमयः कोष्ठादुदावर्तश्च नश्यति ।
चूर्णमेतत् प्रदातव्यमृतुस्तम्भे स्त्रियां सदा ॥३२॥

मयूरशिखा का चूर्ण एक भाग तथा स्नुही (थूहर, सेंहुड़) का चूर्ण चार भाग मिश्रित कर इसे पाँच उड़द के दानों के बराबर गाय के मट्ठा के साथ सेवन करना चाहिए ।

इसके प्रयोग द्वारा पेट के कृमि (केंचुआ) बाहर निकल आते हैं । इसके अतिरिक्त यह उदावर्त रोग (मल-मूत्र के वेग को रोककर वायु का ऊर्ध्वगमन) का भी निवारण कर देता है । इसे स्त्रियों के ऋतुस्तम्भ (मासिक रजावरोध) में दूध के साथ सेवन कराने से उत्तम फल मिलता है ॥३१-३२॥

दुग्धेन पक्षान्नश्यन्ति सर्वे गर्भाशयामयाः ।
दधते गर्भमप्येताः शीघ्रं सर्वगुणैर्युतम् ॥३३॥

इति मयूरशिखाकल्पः सम्पूर्णम् ।

एक पखवारे (१५ दिन) तक इसका प्रयोग करने से गर्भाशय सम्बन्धी सभी विकार नष्ट हो जाते हैं । इससे सर्वगुणसम्पन्ना होकर नारियाँ शीघ्र ही गर्भधारण करने में समर्थ हो जाती हैं ॥३३॥

इस प्रकार मयूरशिखाकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

❋

अथ ब्रह्मदण्डीकल्पः

ब्रह्मदण्डीति विख्याता भुवि काचिन्महौषधिः ।
तत्र भेदद्वयं चास्ते श्वेतकृष्णात्मना तथा ।।१।।
आश्विने कार्तिके मासे ग्राहयेत्तां महौषधिम् ।
यस्या रसं च संगृह्य गुग्गुलेन विमिश्रयेत् ।।२।।

इस धरातल पर ब्रह्मदण्डी नाम्नी एक महौषधि होती है । इसकी दो प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जैसे— श्वेत और कृष्ण ।

इस औषधि को आश्विन या कार्तिकमास में ग्रहण करना उपयोगी होता है । इसको लेकर इसमें गुग्गुलु का मिश्रण कर देवें ।।१-२।।

कुर्याल्लेपं शरीरेऽथ कण्डूपामादयोऽपि च ।
विसर्पारूंषिकाद्याश्च त्वग्दोषा यान्ति संक्षयम् ।।३।।
कृष्णपक्षे गृहीता सा भूतवेतालडाकिनीः ।
उच्चाटयेद्धृता हस्ते ग्रहपीडां तथा हरेत् ।।४।।

इसका लेपन शरीरांग पर करने से कण्डू (खुजली के दाने), पामा, विसर्प तथा अरुंषिका आदि सभी चर्मरोगों से छुटकारा मिल जाता है ।

इसे कृष्णपक्ष में लेकर हाथ में बाँधने से भूत, बेताल, डाकिनी आदि का उच्चाटन होता तथा ग्रहजनित पीड़ाओं का भी शमन होता है ।।३-४।।

मूलं तु ब्रह्मदण्ड्यास्तु पुष्यर्क्षे ग्राहयेच्छुचिः ।
त्वचं तस्य विचूर्ण्याथ भक्षयेद्भानुवासरे ।।५।।
तत्रानुपानं पालाशक्वाथमेवोपयोजयेत् ।
रेतः संवर्धयत्येतद्रजः स्त्रीणामपि ध्रुवम् ।।६।।

ब्रह्मदण्डी की जड़ को पुष्य नक्षत्र में शुचितापूर्वक ग्रहण करना चाहिए । ब्रह्मदण्डी के मूल और उसकी छाल का चूर्ण बनाकर पलाश-क्वाथ के साथ रविवार को पान करने से पुरुषों में वीर्यवृद्धि तथा नारियों में रजःस्राव की वृद्धि होती है ।।५-६।।

ब्रह्मदण्डीं कुमारीं च गोमयेन विभावयेत् ।
ततस्तदुभयं खल्वे मृदित्वा कल्कमाहरेत् ।।७।।
दध्नाऽथवा काञ्जिकेन भोक्तव्यं कर्षमात्रया ।
रजोदोषान् शुक्रदोषानपोह्यापत्यदं भवेत् ।।८।।

ब्रह्मदण्डी तथा कुमारी (घृतकुमारी, घीकुआर) को लेकर गोबर के रस में भिंगो दे । तदनन्तर दोनों को खरल में डालकर मसल डालें । इसे दही

या कांजी के अनुपान से एक कर्ष की मात्रा में खाने से यह रजोविकार तथा धातु-विकार को समाप्त कर प्रजनन-शक्ति बढ़ाता है ॥७-८॥

बृहतीं ब्रह्मदण्डीं च समांशेन समुद्धरेत् ।
अश्वगन्धा द्वयोस्तुल्या त्रीनेकत्र विचूर्णयेत् ॥९॥
नवनीतेन तच्चूर्णं सेव्यं निष्कप्रमाणतः ।
महद्वीर्यं स्त्रियाश्चापि पुरुषस्यापि जायते ॥१०॥

इस ब्रह्मदण्डी तथा बृहती को समभाग में ले । तत्पश्चात् इन दोनों की मात्रा के बराबर उसमें अश्वगंधा मिलाकर कपड़छान चूर्ण बना लें । इसे मक्खन के साथ एक निष्क परिमित मात्रा में स्त्री -पुरुष दोनों ही सेवन करें तो उन दोनों के लिए ही यह चूर्ण वीर्योत्पादक होता है ॥९-१०॥

क्षीरं प्रवर्धते नार्याः पुष्टिस्तुष्टिस्तथा भवेत् ।
मूलं तु ब्रह्मादण्ड्याश्च करे सूत्रेण बद्ध्यताम् ॥११॥
तृतीयकं ज्वरं हन्ति चातुर्थिकमपि स्वयम् ।
निर्गुण्ड्याः स्वरसे ब्रह्मदण्डीमूलरसं क्षिपेत् ॥१२॥

यह चूर्ण स्त्रियाँ के स्तन का दूध बढ़ाता तथा उन्हें परिपुष्ट करता है। इसकी जड़ को धागे में लपेट कर भुजा में धारण करने से तृतीयक तथा चातुर्थिक ज्वर (तीसरे या चौथे दिन के अन्तराल से आने वाला बुखार) का रोगी ज्वरमुक्त हो जाता है । ब्रह्मदण्डी की जड़ का निचोड़ा हुआ रस निर्गुण्डी के स्वरस में मिलाकर,॥११-१२॥

द्वयोस्तुल्यं योजयेच्च दुग्धमौदुम्बरं तथा ।
प्रातः पीत्वा प्रमेहादिमूत्ररोगैर्विमुच्यते ॥१३॥
तेनैव क्रियतां नस्यं क्षयं यान्ति गलामयाः ।
शिरोरोगाश्च नश्यन्ति लाघवं शिरसो भवेत् ॥१४॥

इति ब्रह्मदण्डीकल्पः सम्पूर्णम् ।

उन दोनों के बराबर अनुपात में गूलर का दूध मिश्रित करें । इसे प्रतिदिन प्रात:काल प्रयोग करने वाला समस्त प्रकार के प्रमेह रोगों से छूट जाता है । इसे नास लेने से (नाक द्वारा सूँघना) गलरोगों का निवारण होता है । इसके साथ ही यह सिर का भारीपन दूर कर शिर:पीड़ा आदि को भी नाश करता है ॥१३-१४॥

इस प्रकार ब्रह्मदण्डीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

अथ सहदेवीकल्पः

सहदेवी महावीर्या प्रोक्ता सर्वगुणैर्युता ।
तामुद्धरेच्चतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यामहर्मुखे ।।१।।
औषधिं तां समानीय बद्ध्वा सूत्रेण धारयेत् ।
स्त्रियः सुखं प्रसूयन्ते दूरे यान्ति ग्रहाः स्वयम् ।।२।।

यह औषधि भूमि पर फैलने वाली एक प्रकार की लता होती है । इसकी पत्तियाँ अत्यन्त छोटी-छोटी होती है । साधारणतया बोलचाल की भाषा में इसे सहदेई नाम से भी जाना जाता है । इस अमोघ वीर्यशालिनी औषधि को कृष्णपक्षीय अष्टमी या चतुर्दशी तिथि में प्रातःकाल खाना चाहिए ।

इसकी जड़ को लेकर धागे में लपेटकर बाँध लेने पर स्त्रियों को प्रसवकालीन कष्ट नहीं उठाने पड़ते । इसके प्रयोग से अनिष्टकारी ग्रहादि भी दूर पलायित हो जाते हैं ॥१-२॥

कण्ठे निबद्धा बालानां गण्डमालामपोहयेत् ।
कटिमध्ये निबद्धा तु कुक्षिरोगान् विनाशयेत् ।।३।।
घृतेन सह तच्चूर्णं सेव्यं प्रातर्दिने दिने ।
अजीर्णमखिलं नश्यत्यग्निः संधुक्ष्यते तथा ।।४।।

इसे छोटे बच्चों के गले में बाँधने से उनके गण्डमाला (Scrofula) रोग तथा कटि-प्रदेश में धारण कराने से आमाशयिक रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके चूर्ण को घृत के साथ प्रातःकाल खाने से समस्त प्रकार के अपच (Dyspepsia) रोग दूर होते तथा उदर की जठराग्नि प्रज्वलित होती है ॥३-४॥

अनया पाचयेतैलं तच्च मूर्ध्नि विलेपयेत् ।
मूर्धरोगा विनश्यन्ति पलितं याति च क्षयम् ।।५।।
विपाचयेद् घृतं तस्या रसेन पयसापि च ।
भक्षयेन्मासपर्यन्ते कुष्ठान् नाशयति ध्रुवम् ।।६।।

इति सहदेवीकल्पः सम्पूर्णम् ।

इसको तैल में पाक करके यदि इसकी शिर पर मालिश की जाय तो मस्तक-सम्बन्धी रोगों का निवारण होकर बालों की सफेदी भी दूर होती है।

गोघृत में सहदेवी का रस और दूध डालकर आग पर पकावें । इस घृत का सेवन एक महीने तक करने पर अठारह प्रकार के कुष्ठों का नाश हो जाता है ॥५-६॥

इस प्रकार सहदेवीकल्प में पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठीकृत हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ।

काय-चिकित्सा

लेखक—**वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तूरे काव्यतीर्थ**

भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद नई दिल्ली द्वारा निर्दिष्ट पाठ्यक्रमानुसार
आयुर्वेदाचार्य विद्यार्थियों के लिये नित्योपयोगी पाठ्यग्रंथ ।

प्रथम खण्ड– इस प्रथम खण्ड में (B. A. M. S.) कायचिकित्सा विषय के प्रथम प्रश्नपत्र के सभी विषयों का विस्तृत वि[illegible] है । जैसाकि [illegible]पद् निरुक्ति, पर्याय, भेद, चिकित्सापद् की निरुक्ति, भेद [illegible] । चिकित्सा [illegible]ष, व्याधि निरुक्ति, निज और मानसिक रोगों का पर[illegible]पक कारण, [illegible]ोष-दूष्य सम्बन्ध । आमोत्पत्ति, साम-निराम विवेचन, [illegible] आवृत, [illegible]क लक्षण, कारण इत्यादि । रोगों के नामकरण सिद्धान्त[illegible], क्षय-वृद्धि [illegible]ण-लक्षण, सामान्य और नानात्मज रोग तथा चिकित्सा [illegible]र अनुत्पत्ति [illegible]चिकित्सा, सामान्य चिकित्सा सूत्र, व्याधि प्रतीकार क्षमता, [illegible]गत दोष प्रती[illegible]योग, निसर्गोपचार पद्धति, तिब्ब, सिद्ध एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों का परिचय इत्यादि विषयों का वृहत्त्रयी, लघुत्रयी तथा अनेक विद्वान आचार्यों के ग्रंथों के साथ विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है ।

द्वितीय खण्ड– इस द्वितीय खण्ड में ज्वर का सम्पूर्ण आयुर्वेदीय विवरण, आधुनिक टाईफाईड़, निमोनिया, इन्फ्लूएंझा, दण्डक ज्वर, पीतज्वर इत्यादि। तथा अन्नवह स्रोतस, मूत्रवह स्रोतस, प्राणवह स्रोतस, रसवह स्रोतस, रक्तवह स्रोतस, उदकवह स्रोतसादि के व्याधियों का सविस्तर वर्णन निदान, चिकित्सासूत्र तथा प्रायोगिक चिकित्सा, चयापचयजन्य रोगों का वर्णन, उदाहरण—मधुमेहादि तथा त्वग्रोग, सन्तर्पण तथा अपतर्पण जन्य व्याधियों का वर्णन, उदाहरण—स्थौल्य कार्श्य इत्यादि यौन संक्रमित रोग—सिफलिस, पूयमेह, तरल वैद्युत् अम्लक्षारों का (Electrohight Substances) (संतुलन) असंतुलन जन्य विकारों का वर्णन इत्यादि विषयों का संकलन कर सरल हिन्दी भाषा में यथावश्यक आधुनिक विश्लेषण के साथ बृहत्त्रयी, लघुत्रयी तथा अनेक आयुर्वेद ग्रन्थों के आधार पर शास्त्रीय और अनुभव सिद्ध विवरण दिया गया है । जो छात्रों के (B. A. M. S.) और आगे अनुस्नातक अध्ययन-अध्यापन तथा वैद्यों के निजी व्यवसाय में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा ।

सम्पूर्ण 1-3 खण्ड में ।	1000.00
प्रथमखण्ड-सिद्धान्तविमर्श	350.00
द्वितीयखण्ड-व्याधिविमर्श	350.00
तृतीयखण्ड-व्याधिविमर्श	300.00

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9839814764

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy**, Varanasi.

ISBN : 978-81-7080-130-3

C. S. S. OFFICE
Rs. 75/-